1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-7, अंक-4, फरवरी-मार्च 2024, ₹50/-

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

बंजारा संस्कृति और सौंदर्य पर विशेष

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

कला समय

साग्रह प्रार्थना

मान्यवर,

आप सभी आत्मीयजनों से विनम्र अनुरोध है कि लोकप्रिय पत्रिका **कला समय** की यह सार्वजनिक प्रार्थना इस भाव के साथ हम आपसे साझा कर रहे हैं कि मन के भाव में जबान तो होती है किंतु वह मूक भाषा में अपनी बात कहता है। मन हमारा लघुदूत है जो विश्व के कोने-कोने तक हमारा संदेश पहुँचा देता है। जो सद्भावना के सेतु का निर्माण करता है-

सांस्कृतिक पत्रिका **कला समय** 1998 से निरंतर प्रकाशित होकर आज आर्थिक संकट की देहरी पर खड़ी है! इस वक्त पत्रिका अपने आर्थिक संकट को आप सभी शुभचिंतकों, शुभेच्छुओं, सुधीजनों से साझा करने का वक्त है, क्योंकि पिछले कुछ माह से पत्रिका को जो नियमित विज्ञापन मिलते रहे हैं वह मिलना लगभग बंद हो गये हैं।

ऐसी स्थिति में **कला समय** का नियमित प्रकाशन बाधित होने की कगार पर है। आप जानते ही हैं कि पत्रिका कला समय किसी संस्थान से प्रकाशित होने वाली पत्रिका नहीं है। यह व्यक्ति विशेष द्वारा लोकहित और सेवा भाव से निकालने का छोटा सा उपक्रम मात्र है। इस पवित्र अनुष्ठान की निरंतरता बनी रहने में कृपया यथासंभव, यथा सामर्थ्य आर्थिक मदद के साथ अपना योगदान, सहभागिता प्रदान करने की कृपा करें।

जिससे इस पत्रिका की निरन्तरता बाधित न होकर इसकी जीवंतता बनी रहे।

अत्यंत आदर के साथ सादर!

- सम्पादक

कला समय का बैंक खाता विवरण

ऑनलाइन सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी
भोपाल, म.प्र.
(IFSC : PUNB0093210)
के नाम देय
खाता संख्या **A/No. 09321011000775**

कार्यालय संपर्क

संपादकीय एवं सहयोग हेतु
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294,
मो.- 94256 78058 (व्हाट्सएप)
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**
सहयोग के बाद व्हाट्सएप पर सूचित करने की कृपा करें।

विशेष

सभी आर्थिक सहयोगकर्ताओं की सूचि पूर्ण सम्मान के साथ छायाचित्र सहित **कला समय** के आगामी अंक में प्रकाशित करेंगे। आपका यह बहुमूल्य सहयोग **कला समय** के लिए संजीवनी का कार्य करेगा। इस निमित्त **कला समय** परिवार आपका ऋणी रहेगा।

"

निर्धनता प्रकट करना निर्धन होने से अधिक दुखदायी होता है।

- प्रेमचंद

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+07=27) पूर्णांक-127,

वर्ष-7, अंक-4, फरवरी-मार्च 2024, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

❊ पत्रिका नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान ❊

संरक्षक

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

डॉ. महेन्द्र भानावत

श्यामसुंदर दुबे

कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

महेश श्रीवास्तव

❊

परामर्श

लक्ष्मीनारायण पयोधि

डॉ. नारायण व्यास

प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'

प्रो. सुधा अग्रवाल

❊

सांस्कृतिक प्रतिनिधि

चेतना श्रीवास

❊

वेबसाइट प्रबंधन

मयंक अग्रवाल

❊

कानूनी सलाहकार

जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

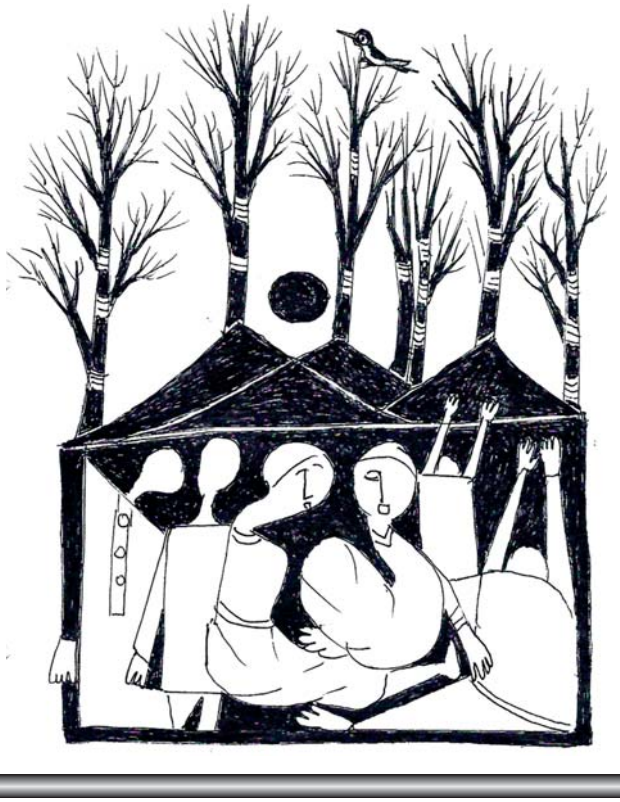

रेखांकन: राधेलाल बिजघावने

संपादक

भँवरलाल श्रीवास

❊

सलाहकार संपादक

डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

❊

सह संपादक

डॉ. मधु भट्ट तैलंग

❊

उप संपादक

राहुल श्रीवास

सुन्दरलाल प्रजापति

❊

संपादक मंडल

डॉ. बिनय षडंगी राजाराम

साहित्य

❊

अरुण तिवारी

समसामयिक

❊

हरीश श्रीवास

कला, संस्कृति

❊

नरिन्दर कौर

प्रबंध

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 150/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - **भँवरलाल श्रीवास**

इस विशेषांक के प्रमुख विद्वान लेखक...

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

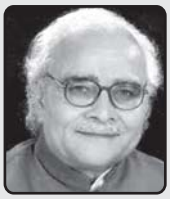
डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

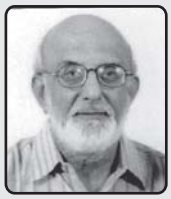
प्रो. महेश दुबे

डॉ. महेन्द्र भानावत

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

लक्ष्मीनारायण पयोधि

डॉ. सुमन चौरे

प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा

चेतन औदिच्य

डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

डॉ. कहानी भानावत

सदाशिव कौतुक

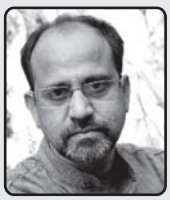
मणि मोहन

शिशिर उपाध्याय

धर्मपाल महेंद्र जैन

विज्ञान व्रत

शिव डोयले

इस बार

- **संपादकीय**
  तुम आओ ऋतुराज वसंत ! 05
- **आलेख**
  मध्यकालीन चित्रांकन में रंग यात्रा / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय 06
- **अद्वैत-विमर्श**
  शंकर ! तुम्हें प्रणाम हमारे/ प्रो. महेश दुबे 08
- **समय की धरोहर....**
  देस-दिसावर भटक देखियो एक गोपाल.../ डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 11
- **आलेख**
  लोक संस्कृति में 'हाथा' की परम्परा / डॉ. सुमन चौरे 14
  भारत भाव रूप श्रीकृष्ण / डॉ. राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी 18
- **जनजातीय संस्कृति**
  भारतीय जनजातीय ज्ञान-परंपरा.../ लक्ष्मीनारायण पयोधि 21
- **आलेख**
  बंजारा समुदाय की विविधरंगी ... / प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा 26
  सांप-सीढ़ी का खेल : अच्छे-बुरे कर्मों का मेल / डॉ. महेन्द्र भानावत 30
- **संगीत चिन्तन**
  मौन साहित्य-सेवी कविवर.../ डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' 32
- **प्रसंगवश**
  ज्ञान का आँगन एक है वहाँ कोई लकीर .../ डॉ. राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी 34
- **मध्यांतर**
  अमेरिकी कवयित्री लुइस ग्लुक की कविताएं / मणि मोहन 36
  शिशिर उपाध्याय के गीत 37
  धर्मपाल महेंद्र जैन की कविताएँ 38
  शिव डोयले की कविताएँ 39
  विज्ञान व्रत की ग़ज़लें 40
- **साक्षात्कार**
  पुरस्कार जीवन में संजीवनी का काम करते हैं / डॉ. कहानी भानावत 41
- **कला अक्ष**
  कला में नग्नता - दृश्य में अथवा दृष्टि में ! / चेतन औदिच्य 44
- **आलेख**
  कवि-कविता और समय / सदाशिव कौतुक 46
  वसंत, व्रज और वंशीधर श्रीकृष्ण / डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' 48
- **पुण्य - स्मरण**
  एक शोकगीत का संजीवनी-स्वर / डॉ. सत्येन्द्र शर्मा 51
- **लघु कथा**
  हाफ पैरा- 4 लघु कथाएं / डॉ. राजेश श्रीवास्तव 54
- **प्रसंगवश**
  बहिरौ सुनें मूक पुनि बोलै / डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल' रजक' 55
- **पुस्तक समीक्षा**
  नई विधा की किताब-छोटे मुंह छोटी सी बात / राजनारायण बोहरे 56
  महादेवी के संस्मरण: मानव और मानवेतर .../बी.एल.आच्छा 58
  गुजरना आवाज़ की दुनिया से / सोमदत्त शर्मा 61
  रेवा तट की सौंधी गंध वाली कविताएँ / शिशिर उपाध्याय 63
  रहस्यमयी दास्ताँ की रपट ऑपरेशन कोरोना / डॉ. अरूण कुमार वर्मा 65
- **समवेत** 67
  साल 2023 में पयोधि की आठ नयी पुस्तकें प्रकाशित / अश्विनी कुमार दुबे के उपन्यास 'हमारे हिस्से की छत' का लोकार्पण हुआ। / तबला 'चिल्ला' समारोह सम्पन्न / वर्ष 2023 का कला समय शब्द-शिखर सम्मान से प्रो. रमेश दवे को सम्मानित किया गया / पुराणिक संगीत संस्थान में सरस्वती पूजन संपन्न
- **आयोजन** 69
  प्रो. राजाराम की स्मृति में एक दिवसीय कला शिविर एवं शिविरांकित प्रदर्शनी सम्पन्न/संदीप राशिनकर के चित्रों से सज्जित है नोबेल विजेता कैलाश सत्यार्थी की कृति सपनों की रोशनी

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888
आवरण एवं अंतिम आवरण चित्र - प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा के सौजन्य से
छायाचित्र -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार
सहयोग- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखांकन** : रेखांकन: राधेलाल बिजघावने
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

संपादकीय

तुम आओ ऋतुराज वसंत!

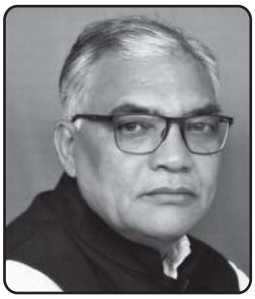

तुम आओ तुम्हारे लिए वसुधा ने हृदय पर मंच बना दिए हैं।
पथ में हरियाली के सुन्दर-सुन्दर पाँवडे भी बिछा दिए हैं।
चहें ओर पराग भरे सुमनों के नये बिरवा लगवा दिए हैं।
ऋतुराज! तुम्हारे ही स्वागत में सरसों के दिए जलवा दिए हैं।

वसंत के आगमन पर प्रकृति नृत्यरत हो जाती है उसकी सम्पूर्ण देह प्रफुल्लता से रोमांचित हो उठती है। तब किसलय रूपी अंग-प्रत्यंग थिरकने लगते हैं। भाँति-भाँति के पुष्प उसके आभूषणों का कार्य करते हैं। हरियाली उसके वस्त्र तथा कोयल की मधुर पंचम स्वर वाली कूक उसका स्वर बन जाता है। रूप यौवन से सम्पन्न प्रकृति इठलाने और मदमाते हुए अपने अनेक पुत्रों सहित सजधज के साथ वसंत का स्वागत करती हैं। तुम आओ ऋतुराज वसंत! महाकवि कालिदास कहते हैं- सर्वम प्रिये चारुतरं वसंते!! वसंत सूखे को झाड़ देता है, हरे को सहला देता है। जो जीर्ण है, वह झड़ जाता है, जो नवीन है, वह पनपता है, जो सुकुमार है वह फूट पड़ता है। भारत की प्रकृति मर्यादित है। वृक्ष कभी पत्ते रूपी वस्त्रों से विहीन नहीं होते। पुराने पत्ते झड़ने और नये पत्ते उगने का क्रम साथ-साथ चलता रहता है। खेत ऐसे लहरा उठते हैं, मानों किसी ने हरी और पीली मखमल बिछा दी हो फूल खिल उठते हैं। सरसों वसंती रंग के फूलों से लदकर मानो वासन्ती परिधान धारण कर लेती है। घने रूप से उगने वाला कमल-पुष्प जब वसंत ऋतु में अपने पूर्ण यौवन के साथ खिलता है तब जलाशय का जल छिप जाता है। आमों पर बौर आने लगते हैं। इधर 'चोबदार चातक विरदि बढ़ि पर दौलत पराग ऋतुराज महाराज को और उधर कोयल पंचम स्वर में अपना राग अलापती है। पक्षी-गण अपने मधुर कलख से ऋतु राज वसन्त का स्वागत करते हैं। वसंत के आगमन पर मनुष्य ही क्या, प्रकृति भी खुशी मनाती है। वह भी अपना पुराना चोला छोड़कर नए वस्त्र धारण करती है। महाकवि कालिदास का मत है, 'प्रथम प्रथम पुष्प फिर किसलय फिर भौंरों की गुजार और कोयलों की कूक- इस प्रकार क्रमशः वसंत का अवतार होता है।' इस ऋतु में सब कुछ प्रिय हो उठता है। महाकवि निराला वसन्त का चित्रण करते हुए लिखते हैं- 'नव पल्लवित वसन्त आता है। सरस्वती डाल-डाल पर न केवल किसलयों में, अपितु कोकिल के मधुर स्वरों में भी फूट पड़ती है। वह फल-फूलों का सुनहरा आँचल फैला देती है। नयी-नयी सम्भावनाएं मन में उठती हैं। प्रकृति में प्रति संध्या लोग समवेत फाग, धमान, होली, चैती की गति में थिरक उठते हैं। बौर आमों की मदिर महक धरती के कण-कण को उन्मादित कर देती है। ईसुरी कहते हैं-

'अब रितु आई वसंत बहारन पात-फूल-फल डारन। हारन हद्द पहारन-पारन धाम धवल जल धारन।।
कपटी कुटिल कंदरन छाई गई बैराग बिगारन। चाहत हती प्रीत प्यारे की हा हा करत हजारन।।
जिनके कन्त अन्त घर से है तिनै देत देत दुख दारून। ईसुर भौंर झौंर के ऊपर लगे भौंर गुजारन।।

स्वच्छ चाँदनी बिछ जाती है। जब फसल कटकर आती है। वसन्त ऋतु का महत्वपूर्ण दिन 'वसन्त-पंचमी है। यद्यपि यह दिन वसन्त ऋतु में न पड़कर माघ के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को पड़ता है। फिर भी इसी दिन से वसन्त का प्रादुर्भाव माना जाता है। मदन देवता का जन्म-दिवस भी यही है। वसन्त पंचमी के दिन विद्या और कला की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का जन्म हुआ था। अतः इस दिन सरस्वती पूजन की प्रथा है। आज भी माँ भारती के उपासक इस दिन सरस्वती का पूजन करते हैं। 'वसन्त शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'वस्' धातु से हुई है। 'वस' का अर्थ है चमकना। वसन्त का अर्थ हुआ 'चमकता हुआ' या 'देदीप्यमान'। माघ शुक्ल पंचमी अर्थात वसंत पंचमी से फाल्गुन पूर्णिमा तक चालीस दिवसीय इस ऋतु में प्रकृति राज्य में सत्वगुण जो प्रकाशशील और चेतना सम्पन्न है, का प्रभुत्व होता है। वसन्त को सब ऋतुओं का राजा कहा जाता है। इस ऋतु में वकुल पुलकित हो उठता है। मानव-मन सहज उत्कंठित हो जाता है; अग-जग में चित्रगत स्फूर्ति दीखने लगती है; कंकणों का खान, नुपूरों की रुनझुन, किंकणियों का क्वणन सुनाई देता है लगता है; कड़कड़ाती सर्दी कम होने लगी है; कानों को फाड़ देने वाली और हड्डियों को कँपा देने वाली सनसनाती हवा चलनी बन्द हो जाती है। इस समय शीतल मन्द सुगन्धित वायु चलती है। मौसम बड़ा सुहाना हो उठता है। न अधिक गर्मी होती है और न अधिक सर्दी। '**मादक महकती बासन्ती बयार प्रकृति के रूप का नूतन निखार। मोहक रस पगे फूलों की बहार।।**'

अधिक सर्दी और अधिक गर्मी में मनुष्य का मन काम में नहीं लगता, परन्तु इस ऋतु में मनुष्य की रुचि अधिक काम करने की होती है; बच्चों और नव-युवकों में उल्लास भर आता है, बूढ़ों में भी जवानी छा जाती है;प्राणिमात्र में उत्साह और बल बढ़ जाता है; शीतल और सुगन्धित समीर रंग-बिरंगी कुसुमावली, भौरों की गुंजार बौराए आम्र-वृक्षों पर कोकिलों की कूक मन को प्रफूल्लित कर देती है। भगवान श्री कृष्ण ऋतुओं में स्वयं को वसन्त कहते हैं। कामदेव ब्रह्मा के मन में जन्में थे। वसन्त पंचमी को कामदेव का धरती पर आगमन माना जाता है। लोक-संगीत के अन्तर्गत फाग और चैती वसन्तोत्सव के ही प्रतिरूप हैं। वसन्त निराला के शब्दों में-

'अभी न होगा मेरा अंत अभी-अभी ही तो आया है मेरे वन में मृदुल वसन्त।'

वसन्त जहाँ नवजीवन, नवोत्साह, स्फूर्ति और प्रेरणा देने वाली ऋतु है, वहीं जीवन की शुभ-सुबह भी है!

सभी पाठकों, लेखकों, शुभचिंतकों को वसन्त पंचमी एवं होली पर्व की हार्दिक शुभकामनाएं।

- भँवरलाल श्रीवास

आलेख

मध्यकालीन चित्रांकन में रंग यात्रा

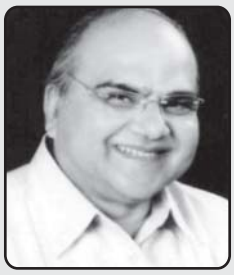

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

कहते हैं कि रूप शाश्वत नहीं होता। समय के साथ रूप भी ढल जाया करता है, लेकिन यह अधूरा सच है। वह रूप जिसे किसी चितेरे ने अपने रंगों में ढाल दिया है, उसका अस्तित्व मिटता नहीं। इतिहास इसका साक्षी है। चाहे किशनगढ़ शैली के महान चित्रकार निहालचंद की बणी-ठणी हो या लियोनॉर्ड दि विंशी की अमर कृति मोनालिसा। ये रंगों में अपने स्थायित्व को आज भी बरकरार रखे हुए हैं। अजंता के भित्ति चित्रों से लेकर मुग़ल शैली व राजपूत शैली में बनाए गए लघुचित्रों तक जो भारतीय चित्रांकन की परंपरा है, वह इस तथ्य की साक्षी है कि रंगों ने रूप को जीवंत रखा, अमिट रखा, अमर रखा।

भारतीय चित्रकला की परंपरा में रंगों का अपना अलग स्थान है। अजंता के भित्ति चित्रों के रंग आज भी शोध के विषय हैं। अजंता के भित्ति चित्रों के बाद एक लंबे अंतराल तक हमारे इतिहास में चित्रांकन की परंपरा लुप्त दिखाई देती है, लेकिन 16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी के बीच जो चित्र बने, उन्होंने यह सिद्ध किया कि इस परंपरा को समय के प्रहारों ने भले विलुप्त कर दिया हो, लेकिन वह अपनी पूरी प्रखरता के साथ जीवित रही है। मध्यकालीन चित्रों को चाहे वे मुगल शैली के हों या राजपूत और पहाड़ी शैली के, देखने पर यह प्रतीत होता है कि हमारे चित्रकार रंगों के प्रति कितने संवेदनशील थे। यह भी भली भांति स्पष्ट होता है कि उनके पास अपनी पूर्व परम्परा की विरासत रही।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के 40वें अध्याय में रंगों का विवेचन किया गया है। 27 वें अध्याय में पांच मूल रंग माने गए हैं – श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण तथा हरित।

किंतु 40वें अध्याय में वे अलग हैं – श्वेत, पीत, विलोम (आंवले का रंग), कृष्ण और नील।

मूलरंगाः स्मृताः पंच श्वेतः पीतो विलोमतः।
कृष्णो नीलश्च राजेन्द्र शतशोन्यरसाः स्मृताः।।

इन पांच मूल रंगों के मिश्रण से सैकड़ों मिश्रित रंग बन जाते हैं। पृष्ठभूमि में पांच प्रकार के सफेद और बारह प्रकार के काले रंगों का विवरण दिया गया हैं, जिन्हें छवि के नाम से संबोधित किया गया। शास्त्रकार ने उन पदार्थों का भी उल्लेख किया है, जिनसे चित्र के रंग बनते थे जैसे – सोना, चांदी, तांबा, अभ्रक, लाजवर्द, हरलाल, चूना, लाख, सिंदूर तथा नील आदि।

इस पुराण के 41वें अध्याय में रंगवर्तना विषय का विवेचन है। इसके बाद चित्र के गुण-दोष भी बताए हैं। चित्र के चार प्रमुख तत्वों की चर्चा बड़े सुन्दर रूप में की गई है,

रेखा च वर्तना चैव भूषणं वर्णमेव च।
विज्ञेया मनुजश्रेष्ठ चित्रकर्मसु भूषणम।। (3/41/10)

अर्थात् रेखायें सुरूचिपूर्ण तथा एकरूपता लिए हुए होनी चाहिए, रंगों का उपयुक्त प्रयोग किया जाना चाहिए, जिससे प्रकाश और छायातत्व स्पष्ट प्रदर्शित होता हो तथा रेखा और रंगों के द्वारा भाव व्यक्त होते हों। चित्र में लावण्य होना चाहिए, जिससे वह रमणीय लगे तथा रंगों का मिश्रण प्रभावशाली तथा चित्र के विषय के अनुरूप होना चाहिए।

इसी पुराण में यह सिद्धांत भी प्रतिपादित किया गया है कि स्वविवेक से अनेक प्रकार के रंग उपलब्ध हो सकते हैं।

गाय के गोबर तथा गोमूत्र से पीले रंग का निर्माण - 19 वीं सदी मेवाड़.

बाण ने भी पाँच ही मूल रंग माने हैं। हर्ष और सोड्ढल भी मूल रंग चार ही मानते हैं। ये सभी विद्वान लाल, पीले व नीले से सफेद रंग को अलग मानते हैं। उपलब्ध रंगों को शिला पर घिसकर उसका चूर्ण बनाया जाता है, फिर उस रंग को पानी में घोलकर गोंद डालने के बाद निथार लिया जाता है। यह प्रक्रिया निरन्तर दोहराई जाती है, जब तक कि मिट्टी का अंश अलग न हो जाए। इसके बाद पानी अलग कर रंग या तो सुखा

लिया जाता है या उसकी गोली बना ली जाती है। ज़रूरत पड़ने पर रंग में सूखा गोंद डालकर उँगली या अँगूठे से पानी के साथ धीरे-धीरे घोंटकर रंग तैयार कर लिया जाता है। घुलते-घुलते रंग पेस्ट की तरह गाढ़ा होने लगता है, तब ताकत लगानी पड़ती है। इस प्रक्रिया को ताव देना कहा जाता है। खड़िया, पाला, रामरज, गेरू और हराभाटा आदि रंग इसी तरह तैयार किए जाते हैं।

मध्यकालीन लघुचित्रों में जो रंग प्रयुक्त किए गए, उन्हें चार भागों में बाँटा जा सकता है।

खनिज रंग, वनस्पति रंग, आक्साइड रंग व धातु रंग।

मध्यकालीन चित्रों में प्रयुक्त होने वाले रंगों के संबंध में विद्वानों ने बहुलता से जानकारियां उपलब्ध कराई हैं। जमीला ब्रजभूषण ने इस संबंध में रंगों के बनाए जाने व उनके प्रयोग किए जाने के संबंध में विशद जानकारी दी है। उनके अनुसार सोने व चांदी के बुरादे व काली तथा लाल स्याही का उपयोग लिखने व चित्रकारी करने दोनों के लिए होता था। पुरानी सचित्र पोथियां, सोने और चांदी के रंगों से बनाई जाती थीं। यद्यपि इनकी लिखाई पढ़ने में प्राय: नहीं आती थी, किन्तु ये चित्रों के कलात्मक वैभव के प्रतीक थे। वे बताती हैं कि खदानों से खनिज रंग प्राप्त किए जाते थे, जिन्हें परस्पर मिलाकर विभिन्न प्रकार की पृष्ठभूमियां तैयार की जाती थीं। वानस्पतिक रंगों में विशेषत: नील का प्रयोग नीले रंग के लिए किया जाता था तथा कार्बन का प्रयोग काले रंग के लिए होता था।

खनिज रंग को भूमि रंग या मूल रंग भी कहा गया। काजल का प्रयोग भी उसमें बबूल की गोंद व पानी मिलाकर धीरे-धीरे घोंटते हुए ताव देकर काला रंग तैयार करने में किया जाता था। शिंगरफ, जिसे हंसराज हिंगलू भी कहते हैं, वह वास्तव में एक भारी पत्थर है, इसे भेड़ के दूध में घोंटकर, नीबू के रस के साथ कई बार पानी डालकर निथारा जाता था। इस तरह रामरज, गेरू और हराभाटा को भी निथार कर रंग के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। मुल्तानी मिट्टी व लाजवर्द का भी प्रयोग किया गया तथा हरताल को दूध में घोंटकर, नींबू के रस से साफ कर उसका प्रयोग किया गया।

सफेद रंग को खड़िया से तैयार किया जाता था। लाजवर्द नीला रंग है। मानसोल्लास में इसका नाम राजावर्त भी है। यह हल्के नीलम का चूर्ण है। बूँदी शैली के चित्रों में इसका सबसे अधिक प्रयोग किया गया है। हरताल का रंग पीली तुरई के फूल जैसा होता है। इसे थोर के दूध में घोंटकर नीबू के रस से साफ किया जाता था। पीला रंग पेवड़ी से तैयार किया जाता था। गहरा पीला रंग मेन्सिल से प्राप्त होता था। सीली एक प्रकार का पत्थर होता है, जिसे पीसकर हरा रंग प्राप्त किया जाता था। 19वीं शताब्दी के चित्रों में इसका बहुतायत से प्रयोग मिलता है।

वनस्पति रंग पेड़-पौधों आदि से प्राप्त होते हैं। देशी नील इसी प्रकार से नील के वृक्ष से प्राप्त किया जाता है। पलाश के फूलों से गहरा लाल रंग मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में पलाश का लाल रंग नीले में मिलाने पर तथा उसमें सफेद रंग मिलाने पर नील अधिक नीला लगने लगता है। लालरंग, बेरी, पलाश या पीपल की छाल से भी प्राप्त किया जाता था। पीले रंग को केसुला के फूलों से प्राप्त किया जाता था। वास्तव में यह पूरी तरह पीला रंग नहीं होता था। इसे केशरिया रंग कहा जा सकता है। इस रंग में चूने को मिला दें तो यह लाल हो जाता है। सारारेवण से पारदर्शी पीला रंग प्राप्त होता है। काले रंग की प्राप्ति के लिए त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला) का प्रयोग किया जाता था। त्रिफला को लोहे के पात्र में भिगोया जाए तो काला रंग मिलता है। आँवलों को जलाकर भी काला रंग प्राप्त किया जा सकता है। जानवरों के खाने के चारे से हरा रंग प्राप्त किया जाता था। यद्यपि जामुन, गाजर, थोहर के ढोढे के फल से भी रंग प्राप्त होते हैं, लेकिन मध्यकालीन लघुचित्रों में इनका प्रयोग नहीं किया गया। कत्थई रंग कत्थे से प्राप्त किया जाता था। मध्य काल में गोकल गाय नामक एक कृमि से गहरा लाल रंग व गुलाबी रंग बनाया जाता था तथा जानवरों के खाने के चारे से हरा रंग भी बनाया जाता था।

आक्साइड के रासायनिक रंग भी मध्यकालीन चित्रों में प्रयुक्त किए गए तथा सीसे, सांभर, सुहागे व शोरे की रासायनिक प्रक्रिया द्वारा सिंदूर भी बनाया गया। ताँबे, नौसादर व नीबू के रस से जंगाल प्राप्त किया गया, जो हरे रंग का होता था। पुराने चित्रों में इसका बहुतायत से प्रयोग मिलता है। 18वीं से 19वीं शताब्दी के बीच गहरे नीले रंग का भी प्रयोग किया गया। यह फ्रांस से आयात किया जाता था। लाल रंग के लिए एक विशेष प्रकारके कृमि का उपयोग किया जाता था। कृमि दाने से प्राप्त रंग से गहरा लाल रंग व गुलाबी रंग भी बनाया जा सकता था।

गऊ गोली रंग एक विवादास्पद रंग है, जिसके प्राप्त किए जाने से संबंधित कई भ्रांतियां जुड़ी हुई हैं। यह रंग गहरा पीला व केशरिया झलक लिए होता है। गो रोचन का भी इसी संदर्भ में उपयोग करते हैं। डॉ. मोतीचंद्र ने विस्तार से इस बाबत् व्याख्या की है। विद्वानों का अंत में यही निष्कर्ष है कि यह पेवड़ी की तरह तैयार किया जाने वाला पीला रंग है।

मध्यकालीन चित्रों में धातु रंगों का भी प्रयोग हुआ है। सोना, चाँदी, रांगे की हिल व ताँबे से धातु रंग प्राप्त किए जाते थे। सोने का वर्क बनाकर उसका उपयोग होता था। चाँदी के वर्क भी बनाए जाते थे। इन वर्कों को घोंटने पर प्रयुक्त किए जाने वाले रंग प्राप्त होते थे।

मध्यकालीन चित्रों में जो रंग प्रयोग किए जाते थे, उन्हें नाम भी दिया जाता था। जैसे कबूतरी, फाकतई, बादामी, तोतई, ओगिया, तरबूजी, तोरूफूरा, जामुनी, गुलाबी, शिंगरफ, अम्बरी, किरन, सिंदूरी, खाकी व मोरपंखी आदि। गोंद का माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाता था, इसके अलावा सरेस को भी उपयोगी माना जाता था।

16वीं शताब्दी में लिखे गए एक संस्कृत ग्रंथ शिल्प शास्त्र में मध्यकालीन चित्रों में प्रयोग किए जाने वाले रंगों के बारे में काफी जानकारी दे दी गई है। विभिन्न प्रकार के रंगों को बनाए जाने की विधियाँ भी इस ग्रन्थ में दी गई हैं। विभिन्न प्रकार के रंगों को परस्पर मिलाने से कौन से नए रंग प्राप्त हो सकते हैं, यह वर्णन भी मिलता है।

उक्त वर्णन मध्यकालीन चित्रों में प्रयुक्त होने वाले रंगों की एक झाँकी भर है। तत्कालीन चित्रकार मौलिक प्रयोग विधि के पक्षधर थे, इसलिए उन्होंने अपनी कल्पना को सजीव करने के लिए विभिन्न माध्यमों से रंग प्राप्त किए। इन कलाकारों की मौलिक प्रतिभा और अपूर्व साधना का दूसरा उदाहरण मिल पाना मुश्किल है जिन्होंने रंगों को साधकर रूप को सदैव के लिए अमर कर दिया।

- लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद् हैं।
संपर्क : 85, इन्दिरा गांधी नगर, पुराने आर.टी.ओ. ऑफिस के पास,
केसरबाग रोड, इन्दौर-9 (म.प्र.), मो.: 9425092893

■

शंकर! तुम्हें प्रणाम हमारे

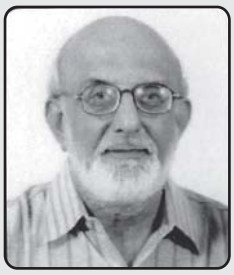

प्रो. महेश दुबे

आदि शंकराचार्य-अप्रतिम विद्वान, प्रकाण्ड पंडित, प्रखर दार्शनिक, समाज सुधारक, संगठक, व्यवस्थापक, कवि, भाष्यकार तथा भारत की सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकता के सूत्रधार थे। जवाहरलाल नेहरू ने Discovery of India में लिखा है-

Shankara was man of amazing energy and vast activity. He was no escapist retiring into his shell or into a corner of the forest, seeking his own individual perfection and oblivious of what happened to others.

स्वामी रंगनाथानन्द जी ने Eternal Values for a Changing Society (Vo.II) में लिखा है-

He was a teacher of unity. His spirit was universal. His mind was inclusive and not exclusive. He taught not mereley toleration but also dynamic acceptance.

उनके धर्म संस्थापन के कार्यों के कारण लोग उन्हें भगवान शंकर का ही अवतार मानने लगे थे- शङ्करः शङ्कर साक्षात्। इसीलिये उनके नाम के पूर्व भगवान् विशेषण का प्रयोग किया जाता है। शंकर का जन्म केरल प्रदेश में पूर्णा नदी के तटवर्ती कालटी नामक गाँव में आठवीं शताब्दी में हुआ था। प्रो. मेक्समूलर, प्रो. मेकडॉनेल के अनुसार उनका जीवन काल 788-820 AD है। उनके पिता का नाम शिवगुरु तथा माँ का नाम आर्यम्बा, सुभद्रा अथवा विशिष्टा था। पिता की मृत्यु के कारण माता ने ही उनका पालन-पोषण किया। वे बचपन से ही अत्यन्त मेधावी थे। आठ वर्ष की उम्र तक उन्होंने संस्कृत, मागधी व प्राकृत भाषा के साथ-साथ वेदों और पुराणों का अध्ययन कर लिया था और माँ की अनुमति से संन्यास धारण कर लिया। नर्मदा तट पर स्थित ओंकारेश्वर के स्वामी गोविन्द भगवत्पाद से उन्होंने संन्यास दीक्षा ली और अद्वैत वेदान्त की शिक्षा प्राप्त की। गुरु की आज्ञा से वे काशी आ गए। काशी के विद्वत समाज में उनकी ख्याति बढ़ने लगी और उनके शिष्यों की संख्या भी। कहा जाता है कि भगवान शंकर ने चाण्डाल के रूप में अद्वैत या एकात्मवाद का मर्म समझाते हुए, उन्हें ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखने का आदेश दिया। इस भाष्य के पूरा होने पर ब्राह्मण वेषधारी भगवान वेदव्यास ने उनसे एक सूत्र का अर्थ पूछा और आठ दिन तक शास्त्रार्थ किया। व्यासजी ने उनकी आयु 16 वर्ष से बढ़ाकर 32 वर्ष कर दी और उन्हें पूरे देश में अद्वैत का प्रचार करने की आज्ञा दी। अब शुरू हुई शंकर की दिग्विजय यात्रा !

पृष्ठभूमि

शंकर के जन्म के कुछ शताब्दियों पूर्व भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग- गुप्तकाल समाप्त हो चुका था। इस युग में- महाभारत, भगवद् गीता और पुराणों के नए संस्करणों की रचना हुई। डॉ. सुखटनकर के शब्दों में- यदि इन ग्रंथों का सम्पादन इस युग में न हुआ होता तो कदाचित ये साहित्य हमेशा के लिए लुप्त हो जाता। गुप्त साम्राज्य के अस्त होते-होते भारत शक और हूण आक्रमणों से आक्रान्त हुआ। उत्तरी भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया। हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू परम्परा जीवित तो रही पर उसके उत्कर्ष का आवेग कम हो गया। लगभग सौ वर्षों के बाद हर्षवर्धन के राज्यकाल में भारतीय सभ्यता का पुनः अभ्युदय हुआ। दक्षिण भारत में भी कई छोटे-छोटे साम्राज्य थे जिनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा थी और राजनीतिक दूरदर्शिता का अभाव था। इस समय तक धार्मिक दृष्टि से देश में अनेक सम्प्रदाय थे जो कई-कई उप-सम्प्रदायों में विभाजित थे। रामेश्वरम में शैव सम्प्रदाय 6 उप सम्प्रदायों में विभक्त था- शैव, रौद्र, उग्र, भट्ट, जंगम और पशुपत।

धार्मिक कर्मकाण्डों में भी विषमताएँ थीं। एक ओर निरामिष तथा अहिंसावादी सम्प्रदाय थे तो दूसरी ओर थे कापालिक। अनेकों रूढ़ियाँ, भ्रान्तियाँ, कुरीतियाँ, कुसंस्कार और दुराचर-धर्म से संबद्ध हो गए थे। वैदिक धर्म का ह्रास होने लगा था। बौद्ध और जैन धर्म का विस्तार हो रहा था।

ऐसे कठिन समय में शंकराचार्य ने वैदिक धर्म के परिष्कृत संस्करण के रूप में अद्वैत वेदान्त को प्रस्तुत किया- उसका प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया। उन्होंने चोल और पांड्य राजाओं की सहायता से दक्षिण भारत के शाक्त, गाणपत्य और कापालिक सम्प्रदायों के अनाचार को समाप्त किया। आसाम-कामरूप में जाकर तान्त्रिकों से शास्त्रार्थ किया। भारत की धार्मिक परम्पराओं एवं सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करने की दृष्टि से चार मठों की स्थापना की-

श्रृंगेरी (काँची), गोवर्धन मठ (पुरी), शारदा मठ (द्वारिका) और ज्योतिर्मठ (बदरिकाश्रम)।

शंकर के अनुयायियों का एक सम्प्रदाय चला जो दसनामी कहलाता है-

शंकराचार्य

पद्मपाद: तीर्थ और आश्रम (शारदा मठ के अंतर्गत)

हस्तमालक: वन और अरण्य (गोवर्धन मठ के अंतर्गत)

सुरेश्वर : गिरि, पर्वत और सागर (ज्योतिर्मठ के अंतर्गत)

त्रोटक : पुरी, भारती, सरस्वती (श्रृंगेरी मठ के अंतर्गत)

प्रत्येक दसनामी संन्यासी इन्हीं चार मठों में से किसी एक से जुड़ा होता है।

32 वर्ष की आयु में उन्होंने केदारनाथ में अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता और ईश, केन, कठ, प्रश्न, माण्डूक्य, तैत्तरीय, श्वेताश्वर, छांदोग्य, वृहदारण्यक आदि उपनिषदों पर भाष्य लिखे। विवेक चूड़ामणि, सौन्दर्य लहरी और भज गोविन्दम् उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

वर्णाश्रम परम्परा की पुनस्थापना का श्रेय आचार्य शंकर को ही है। उन्हीं की शिक्षा और प्रयत्नों से जप, तप, व्रत, उपवास, यज्ञ, दान, संस्कार, उत्सव, प्रायश्चित आदि हिन्दू समाज में पुन: प्रतिष्ठित हुए। स्मृतियों के अनुसार की जाने वाली पंचदेव उपासना पद्धति स्मार्त कही जाती है। शंकर ने पंचदेव उपासना की रीति प्रचलित की जिसमें विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और देवी परमात्मा के इन पाँच स्वरूपों में से एक को प्रधान मानकर शेष को उनका अंगीभूत स्वीकार करते हुए उपासना की जाती है।

शंकर के सिद्धान्तों पर सांख्य और बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। ब्रह्म की उनकी अवधारणा में महायान (बौद्ध) के शून्य void अथवा निर्वान से साम्य देखा जा सकता है। सम्भवतया इसी कारण से उनके विरोधी उन्हें 'प्रच्छन्न बौद्ध' (Crypto Buddhist) कहते थे। सुप्रसिद्ध भारतविद् ए.एल. बाशम अपने ग्रन्थ The Wonder that was India में लिखते हैं- 'Sankara's greatness lies in his brilliant dialectic. By able use of logical argument, and we must admit, by interpreting some phrases very figuratively he reduced all the apparently self contradictory passages of the Upanisads to a consistent system which, though not unchallanged, has remained the standard philosophy of the intellectual Hinduism to this day'.

बाशम शंकर की तुलना रोमन केथोलिक चर्च के दार्शनिक संन्यासी, अप्रतिम विद्वान और अरस्तू के भाष्यकार St. Thomas Aquinas (1225-74) से करते हैं।

Discovery of India में शंकर की प्रतिभा, पांडित्य और वैचारिक प्रतिबद्धता की प्रशंसा करते हुए नेहरू लिखते हैं- In a brief life of thirty two years he did the work of many long lives and left such an impress of his powerful mind and rich personality on India that it is very evident today. He was curious mi&ture of a philosopher and a scholar, an agnostic and a mystic, a poet and a saint and in addition to all this a practical reformer and an able organizer.'

शंकराचार्य के समय में यात्राएँ दुर्गम और कष्टसाध्य थीं- फिर भी सामान्य जन यात्राएँ खूब करते थे। देश के विभिन्न भागों की ये यात्राएँ एक देश और एक संस्कृति की द्योतक थीं। भाषा की विभिन्नता इसमें बाधा नहीं थी। नेहरू आगे लिखते हैं-

'He functioned on the intellectual, philosophical and religious plane and tried to bring about a greater unity of thought all over the country. He functioned also on the popular plane in many ways, destroying many a dogma and opening the door of his philosophical sanctuary to everyone who was capable of entering it.'

In the cultural Heritage of India (Vol.III) में 'The Philosophy of Sankara' शीर्षक से, सुरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए लिखते हैं-

'Of all Indian thinkers, Sankara is perhaps the most \misunderstood, although it can be said without any fear of contradiction that throughout his e&tensive writings he had nowhere been ambiguous. He combined profundity of thought with clarity of e&pression- a combination rare in philosophical writings. It is curious therefore that such a writer should be so misunderstood. This many be due to the fact that his philosophy tolerates no human weakness and requires its followers to sever connection with all that is dear to the heart. Our attachment to worldly objects is so deeply rooted that we do not willingly part with them, even for the sake of truth. It is possible therefore that our worldly mindedness unconsciously obscures our vision and we try to interpret things in a manner that fits in with our own beliefs and likings.'

अपने भाष्यों के माध्यम से उन्होंने गीता, उपनिषद में अन्तर्निहित भारतीय दर्शन को नई वाणी और नया रूप दिया। यहाँ उनका वेदान्ती मन अत्यन्त प्रखर और तार्किक रूप में हमारे सम्मुख आता है। सौन्दर्य लहरी और भज गोविन्दम् में उनका काव्य लाघव देखते ही बनता है। उनकी सरसता और अलंकार योजना हमारा मन मोह लेती है। हमारे सांस्कृतिक वाङ्मय की परम्पराओं को नए संस्कार देकर अक्षुण्ण बनाए रखने में भगवान शंकराचार्य का योगदान अविस्मरणीय है।

भज गोविन्दम्

भज गोविन्दम् शंकर की लयप्रधान सांगीतिक रचना है। यह ललित, मधुर और सम्प्रेषणीय है। इन पदों में जीवन के मूल तत्वों और वेदान्त के सिद्धान्तों को सहज और सरल रूप में प्रतिपादित किया गया है। भज गोविन्दम् में शंकर का प्रखर वेदान्ती मन कवि रूप में, एक शिक्षक और उपदेशक की भूमिका में निसृत होता है। कहा जाता है कि एक बार आदि शंकराचार्य अपने शिष्यों के साथ बनारस की गलियों से जा रहे थे। तब उन्होंने किसी अधेड़ (या वृद्ध) व्यक्ति को व्याकरण के नियम रटते हुए देखा। शंकर को लगा कि ऐसे प्रयासों से ज्ञान में वृद्धि तो सम्भव है पर इससे आध्यात्मिक विकास नहीं हो सकता जो कि मानव जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। उनके मुँह से बरबस निकल पड़ा- यह सब प्रपंच तजो, गोविन्द भजो, गोविन्द भजो। यही भज गोविन्दम् के नाम से जाना जाता है। अलग-अलग संस्करणों में इन श्लोकों की संख्या कम या ज्यादा पाई

जाती है। कहा जाता है कि इनमें से कुछ श्लोकों की रचना आचार्य शंकर के शिष्यों ने भी की है।

भज गोविन्दम् अपने आप में वेदान्त विज्ञान का एक सम्पूर्ण ग्रन्थ है जिसमें वेदान्त की प्रक्रियाएँ क्रमशः अन्तर्वेष्टित हैं। यहाँ शंकर अपना सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं। फलस्वरूप उनकी प्रस्तुति, उनका विधान और संरचना बिल्कुल स्पष्ट, सरल, सीधा और एक रेखीय (linear) है। यह पारम्परिक वेदान्त ग्रन्थों की अपेक्षा वाद-विवाद और खण्डन-मण्डन की शैली से मुक्त है।

भज गोविन्दम् 'मोह मुदगर' के नाम से भी जाना जाता है। मोह- जो सत्य को पहचानने में अवरोधक है। इसके अनुसार मनुष्य को सांसारिक पदार्थों के यथार्थ में विश्वास होता है और वह विषय सुखों से तृप्ति पाने का अभ्यस्त हो जाता है।

मोह का एक अर्थ मूर्छित होना, निःसंज्ञा या बेहोशी भी है। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में इसका प्रयोग इसी रूप में करते हुए लिखा है-

'मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुच्यमाना'।

मोह- अज्ञान के लिए भी प्रयुक्त होता है, जिसका आशय अज्ञान से उत्पन्न उद्विग्नता भी है। गीता में (4/35) भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।

हे अर्जुन जो ज्ञान प्राप्त कर तुम फिर से इस प्रकार अज्ञान को प्राप्त नहीं होगे।

मोह का अर्थ बन्धन भी होता है। भर्तृहरि वैराग्य शतक में अग्नि, जल और आकाश को प्रणाम करते हुए कहते हैं-

ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परब्रह्मणि।

मिला ज्ञान तुम्हीं से/ मोह बन्धन से मुक्ति का है आगे नित्य अनन्त / उसमें मैं अब जाता हूँ।

मुद्गर- **'मुदं गिरति'** हथौड़ा, मोंगरी मिट्टी के ढेले को चूर्ण करने वाली मोंगरी। रघुवंश में कालिदास (12/73) ने इसका प्रयोग किया है-

पादपाविद्धपरिघः शिलानिष्पिष्ट मुद्गरः

भज गोविन्दम् अज्ञान को दूर करने की औषधि है। मोह का नाश करने वाला है। इसलिए मोह मुद्गर कहा जाता है।

भज गोविन्दं भज गोविन्दं
गोविन्दं भज मूढ़मते।
संप्राप्ते सन्निहिते काले
न हि न हि रक्षति डुकृञ्करणे।।

- हे मूर्ख ! गोविन्द को भजो। गोविन्द का स्मरण करो।

जब मृत्यु की घड़ी आएगी तब व्याकरण के रटे हुए नियम तुम्हारी रक्षा नहीं करेंगे।

भज-स्मरण करना

गोविन्द - श्रीकृष्ण का एक नाम। अर्जुन गीता में (1/32) कहते है कि **'किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा'** गोविन्द की शाब्दिक व्युतिपत्ति है- **'गां धेनु पृथिवीं वा विन्दति प्राप्नोति वा'**- जो गाय अथवा पृथ्वी को प्राप्त करता है। - गो का एक अर्थ वेदवाणी भी होता है इसलिए गो अर्थात् वेदवाणी से जो जाना जाता है वह गोविन्द-

गोभिरवे यतो वेद्यो गोविन्दः समुदाहतः।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रकृति खण्ड में कहा गया है-

युगे युगे प्रणष्टां गां विष्णो! विन्दसि तत्त्वतः।
गोविन्देति ततो नाम्ना प्रोच्यते ऋषिभिस्तथा।।

हे विष्णु ! आप युग-युग में नष्ट हुए गो (वेद) को तत्त्वतः प्राप्त करते हैं। अतः आप ऋषियों द्वारा गोविन्द नाम से स्तुत्य होते हैं।

गो का एक अर्थ इन्द्रियाँ भी होता है। जिसने इन्द्रियों को
वश में कर लिया हो वह गोविन्द।

- गो अर्थात् वाणी- जो वाक् शक्ति प्रदान करता हो वह गोविन्द ।

यहाँ गोविन्द का पारम्परिक अर्थ न लेते हुए वेदान्त की तात्त्विक दृष्टि से आशय उस तत्त्व से है जो सत्य है, ब्रह्म है। शंकराचार्य जब यह कहते हैं कि भज गोविन्दम् तो वे यह कह रहे हैं कि अपना तादात्म्य उस परम सत्ता से स्थापित करो जो शाश्वत है, चिरन्तन सत्य है, परम आनन्द देने वाला है। सामान्य अर्थ में भक्तिपरक दृष्टिकोण से कहा जा सकता है कि भगवान का स्मरण करो, श्रीकृष्ण को सर्वस्व समर्पण करो।

विवेक चूड़ामणि के प्रथम श्लोक में शंकराचार्य ने लिखा है-

गोविन्दं परमानन्दं सदगुरुं प्रणतोऽस्म्यहम। शंकर श्री गोविन्दपाद के शिष्य थे। वे अपने गुरु को प्रणाम करते हैं। इस पंक्ति के दो अर्थ सम्भाव्य हैं। एक तो यह कि मैं परमानन्द को देने वाले सद्गुरु श्री गोविन्द को प्रणाम करता हूँ।

दूसरे अर्थ में It may be understood to mean the spiritual salutation of a man of to the Supreme Truth. Govinda here is the essence of all vedantic literature beyond the perception of sense organs, human emotions and reasoning intellect.

भज गोविन्दम् में गोविन्द का यही व्यापक सन्दर्भ है। परन्तु इस श्लोकमाला में वे एक शिक्षक के रूप में हैं। अतः वे अपने गुरु गोविन्द को प्रणाम करते हुए मानों यह कह रहे हों कि इस संसार के कष्टों से छुटकारा पाने के लिए गुरु के प्रति समर्पण करो, गुरु को भजो तो कोई आश्चर्य नहीं। कबीर कहते हैं ...। **(शेष अगले अंक में)**

- लेखक, विद्वान साहित्यकार एवं गणित के सेवानिवृत्त प्राध्यापक हैं।
संपर्क : आर-36, महालक्ष्मी नगर,
इंदौर,म.प्र., मो: 9827459970

■

समय की धरोहर ....

देस-दिसावर भटक देखियो एक गोपाल...

समय की धरोहर स्तंभ के माध्यम से अब हम देश-काल की महान प्रतिभाओं, संत परंपराओ पर विद्वान लेखकों के आलेख साप्रमाण धारावाहिक देने का प्रयास करेंगे। इसी कड़ी में इस बार विद्वान साहित्यकार डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू' का मीरां पर महत्वपूर्ण आलेख एवं दुर्लभ चित्रों सहित उन्होंने हमारे आग्रह पर भेजा है।

- संपादक

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

मीरां उस दौर के एक स्त्री-जीवन का नाम है जब पति के न रहते नारी को नितांत अरक्षित करार देने के प्रयास परवान पर थे, साम्राज्य व संपत्ति विस्तार की लिप्सा में शासक एक दूसरे के दुर्ग पर कब्जा कर जमीन से लेकर जोरु तक को अपनी लूट की मिल्कियत मानने का दंभ पाले हुए रहते थे और दबाव में आए शासकों के सामने कुल की विधवाओं और योद्धाओं की परिणिताओं की सुरक्षा की सुविचारित नीति का अभाव था।

ऐसे दौर में सर्वेश्वर की शरणागति ही ढाल भी थी और तलवार भी। जिसे भक्ति का नाम दिया जाता है, वह लोकाश्रय का सबसे बड़ा साधन भी है और स्त्री का अपना कारगर रक्षात्मक उपाय भी। मीरांबाई का जीवन ऐसे ही हालात के येन-केन- प्रकारेण निर्वाह का स्वत:सिद्ध प्रतिबिंब है। इस जीवन की झांकी को सर्वाधिक धो-पोंछकर निखारने और सहानुभूति, जो संस्कृत स्वरूप में श्रद्धा है, की पीठिका पर स्थापित करने का सर्वांगतया श्रेय लोक को है।

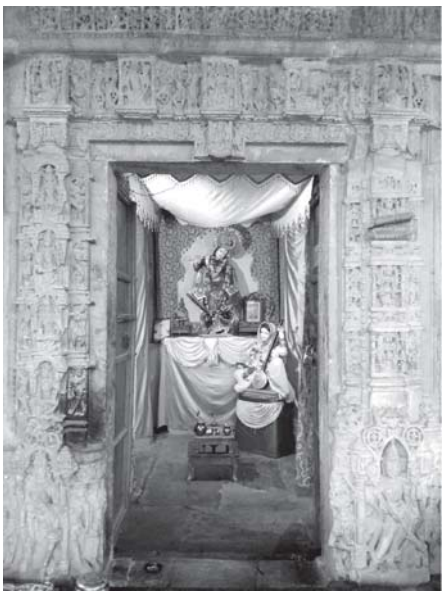

लोक की यों तो कोई भौगोलिक सीमा या ओर-छोर नहीं मगर मीरां के यात्रा और प्रभाव क्षेत्र के रूप में मेवाड़ से कहीं अधिक गुजरात और दूसरे स्थान पर ब्रज ने उस स्त्री जीवन को यशस्वी बनाने का सर्वसंभव किया जिसको इतिहास का कोई भी साधन कदाचित ही बना पाता। लोक की यह सबसे बड़ी ताकत है कि जिसे वह नयनपुतली पर बिठाता है, उसे अदृश्य नहीं होने देता। मीरां का जीवन ऐसे ही लोक का आलोक बना और बना हुआ है।

मारवाड़ ने मीरां को बेटी के रूप में देखा और मेवाड़ ने बहू की तरह। स्त्री जीवन के ये दो ही पलड़े हैं। बेटी होकर बड़ी होना और बहू होकर सीमा (मर्यादाओं) में सांस लेना, विदाई दोनों में ही होती है। दुल्हन के रूप में और दिवंगता होकर। मेड़ता उसे रख नहीं सकता था और मेवाड़ उसे रख नहीं पाया। वह ब्रज पहुंची तो बैरागन के वेश में थी जो भले ही सांवरिया को रिझाने का दैहिक चोला भर था मगर वहां के पुरुष वर्चस्व ने स्त्री भावोचित विचारों को अवसर देना उचित नहीं समझा, फिर संप्रदाय-धर्मिता के आग्रहों के तिरस्कार ने तो नारी के पांव ही उखाड़ दिए।

ऐसे में व्यापार में संलग्नता सहित संप्रदाय पाश से लगभग मुक्त गुजरात की ओर रुख ही अन्यतम उपाय था। मीरां ने गुजरात की राह ली और खासकर सौराष्ट्र ने छली में बली की हैसियत वाली मीरां को अंगीकार भी किया और आदर भी दिया।

गुजरात के लिए मीरा अतिथि थी। स्वगोत्रीय राजे-सामंतों और उनकी स्त्रियों ने तंबूरे के दम पर गिरधर गुणगायिका को जिस भी नजर से देखा हो, परंतु लोक के लिए वह 'सत्' की चित्कारभरी लपटों से बचकर निकली थी, जिसे 'सांप पिटारा' और 'जहर प्याला' के रूप में जाना गया, वह प्रहलाद जैसे कौतुक से कहीं अधिक थी।

गुजरात वासियों ने सीता सुलक्षणी (संत पीपाजी की स्त्री) के बाद कुल-लाज छोड़े मीरां को श्रीकृष्ण से संबद्ध स्थलों पर विहार करते देखा तो लगाव जागा। उस पाहुनी के इतने प्रशंसक हो गए कि उसे बार-बार न्यौता जाने लगा : **म्हारै घरां आवौ नी प्रीतम प्यारा।**

उसका आतिथ्य जहां कहीं, जब कभी एकरस या निरस हुआ, वह यात्रा पर निकली। महाराणा कुंभा और रायमल के बाद सांगा के चर्चे तो वहां पहले ही थे, उसी कुल की रानी तंबूरा बजाते, नाचते-गाते दीखे तो कौन नहीं देखना चाहेगा। यह निनादमयता ही मीरां के लिए वरदान बनी। स्मृतियों में पिता, भ्राता, पति और पुत्र के हाथों रक्षित कही जाने वाली नारी लोक के पास सुरक्षित हो निर्भय हो गई। गुजरात ने मीरां को अपनाया ही नहीं, बचाया और छुपाया भी। उसे इतना मान और मोह दिया कि कोशिशों में भी मेवाड़ याद नहीं आया।

उसके हर प्रसंग को कौतुक सा कीर्तिमय किया, उसके निर्देश पर निर्मितियों का निरूपण किया। यही नहीं, उसके 'इह' को अपने में ऐसा अलोपा कि 'पर' होकर भी उसे पराई नहीं होने दिया। उसके आराध्य को भी उसकी चुनर के रंग में चित्रित, वस्त्र मंडित करने की परंपरा का प्रवर्तन किया। (मीराबाई का कृष्णपक्ष)

गुजरात के पड़ाव और अंतिम विश्राम स्थल:

बेटद्वारका में सत्यभामा जी का मंदिर वह स्थान है जहां मीरांबाई ने अंतिम विश्राम किया था। यह प्रसिद्ध रहा –

बिरज बिसरियो, मुरधर भूली, भमियो सोरठ लाट, उंठी आवन जानि के बैठी बैठा पाट ... मीराबाई ने गुजरात को पांवों के बल पौर – गोर लिया। जूनागढ़ को कई दिनों जोया। वह बुआ का ससुराल था। सोरठ के सुनहरे संबंधों को संवार दिया। वन्थली, भुज, पाटण और सियाणी लिंबड़ी में मिलनी की। सियाणी में जब चारभुजा मंदिर की प्रतिष्ठा हुई, वे वहीं थीं। जहां कहीं जाना होता, मीराबाई के आने की खबर कानों कान लग जाती थी।

बेट द्वारका का मंदिर जहां मीराबाई अंतिम दिनों में रही।

वे ब्रज से सीधे सोरठ पहुंची। वही रास्ता था जो तब लोकप्रिय था और बोलावणी सहित लोग आते जाते थे। मीराबाई अपने कुछ सेवकों के साथ थी और राजरानी का इस तरह आना सबको चकित करता था। हर कोई नतशिर हो रहता। वे गिरधर गोपाल की छाया में है और उसी को देखती है जिसमें गोपाल का अंश हो, ऐसी बातें हर कहीं चलती थीं। उस काल में सत के अलावा असत और इन धारणाओं के तात्विक संतों की बातें ज्यादा होती थी और महाराष्ट्र के बाद गुजरात ऐसी बातों का केंद्र था।

बचपन में बाई को जोगी भी कम नहीं मिले। उन्हें बेटद्वारका जाना था। इसका कारण था। वहीं से दो पीढ़ी पहले, महाराणा मोकल की मां, महारानी रणछोड़राय की मूर्ति मेवाड़ लाई थी और पूजा के लिए गुगली परिवार को भी। चंदेरिया में मंदिर बनाकर स्थापित किया था।

बेटद्वारका ऐसे साधकों के लिए भी प्रसिद्ध था जो परकाया प्रवेश करते थे। जब महाराणा मोकल सपत्नी वहां पहुंचे, तो एक साधक शिष्य ने अपने सिद्ध गुरु से निवेदन कर दिया था कि वह राजसुख देखना चाहता है। गुरु की सहमति पर उसने देह को त्याग दिया। वह साधक महाराणा कुम्भा के रूप में मेवाड़ का राज्याधिकारी हुआ।

मीराबाई साधों की संगत के बाद ऐसे सिद्धों के कांटे बैठने – देखने का मन लिए थी। उस समुदाय में भी मेवाड़ी रानी संत ी चर्चा थी। उनके साथ साथ चलते मेघमाला की चर्चा भी थी। वह चार सेवकों के साथ वहां भी पहुंची। बाला की स्मृतियां ही थीं।

वहीं उनके मन को थिरता मिली। स्थितप्रज्ञता। सेवकों को विश्वास था कि बेटद्वारका के बाद बाइजी मेवाड़ का मन बना लेंगी लेकिन वे राजी नहीं थीं। इस बीच मेवाड़ से ऊंटी बहुत सख्त मिजाज़ होकर आए। वे बाईजी की वापसी सुनिश्चित करने का माचातोड़ संकल्प कर चुके थे। मेवाड़ में उन दिनों जो कुछ चल रहा था, उसकी ख़बर आगरा से लेकर गुजरात तक थी।

मीराबाई का पूरी तरह मोहभंग हो चुका था और वे सांवरे के संकड़ी गली में ही बढ़ चली थी। जरा सी भी चूक हो जाए तो ऊंटी उठा के जाते। बाईजी ने जान लिया था कि बेटद्वारका ही गिरधर गोपाल से भेंट का द्वार है। काशी करवत और शंखोद्धार निमज्जन का केंद्र! पहले गागरोन नरेश संत पीपाजी ने वहीं कूद कर कृष्ण से चार छापें पाईं। द्वारका आने वाले छापें लगवाकर वैष्णव होते थे।

मीराबाई सत्यभामाजी के जिस मंदिर में ठहरी थीं। पाट और पाट के आगे प्रणत पात। वहां नारी मन की विनती गायी जाती थी। इकतारा बजता था। रणंकार लगती थी। आरती से अधिक महत्व करताल संग भजनों का था। भाव का वेग जब उमड़ता तो बाईजी खुद को नहीं रोक पाती और लहरा ले लेती। लेकिन, वे काया से परे ज्यादा रहने लगी थी: **गगन मंडल में पीव हमारा सोवन किस विध होय!**

बाईजी भी भजन में लीन रहने लगी और ऐसी स्थिति में ही जिस संध्या को उस मंदिर से निकली, उसका सवेरा नहीं हुआ... । वे गई कहां! किसी ने तीर देखा, किसी ने चीर... बातें बहुत हुईं! मूल प्रसंग ही नहीं, वह मंदिर तक अंधेरे में खो गया! जैसी कि भारत की परंपरा है, किसी भी चरित्र, कृति, प्रस्तुति के तीनों मंगल होने चाहिए: आद्य मंगल, मध्य मंगल

और अंत मंगल। सागर प्रसंग ईश्वरीय लीनता कहा गया! किसी ने कुछ नहीं विचारा!

बहुत बाद में, अमरकोट के सोढ़ा बैरीशाल की ठकुरानी ने उस मंदिर की सुध ली! अमरकोट से यहां आने के दो मार्ग थे, कच्छ होकर या मरुस्थल होकर। कैसे आईं, पता नहीं लेकिन तब तक यह मंदिर सत्यभामा जी के साथ मीराबाई के बिराजने के कारण सिंध तक जाना जाता था। अन्य स्थान से कोई पहुंचा हो, इसकी जानकारी नहीं।

वहां किंवाड़ लगवाकर धातु पट्टी पर लिखवाया। ठाकुरानी का इसमें नाम नहीं, लेकिन अमर नाम होने का भाव दर्शाया गया है, उस काल में महिला की अपनी पहचान थी ही कहां :

ऊमरकोट सोढ़ा श्री 105 श्री बेरीसाल जी री ठकरानी, बेटी मभुससिंह जी की, यात्रा आया, जदी श्रीसत्यभामा जी रा, श्रीमीराबाई रा कीमाड़ की सेवा मेधानी वडीया हस्तक करी अमर नाम कीया, संवत् 1987 ना. धन्यवाद श्री प्रशांत श्रीमाली को जो इस उपेक्षित मंदिर पर पहुंचे और चित्र साझा किए।

मेरे मन में एक जिज्ञासा बहुत काल से रही है और प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा है। मीराबाई ने गुजरात के कई क्षेत्रों में विहार किया। उनके जीवन के उत्तरार्ध का गवाह गुजरात ही रहा है जहां वैष्णवीय भक्ति का बीज और वृक्ष दोनों ही विद्यमान थे। मगर, मीराबाई के जहां जहां चरण पड़े, उन स्थानों और क्षेत्रों के बारे में हमें प्रामाणिक जानकारी नहीं है।

मीराबाई के देवर, महाराणा उदयसिंह ने गुजरात की यात्रा की। मार्ग में बाधा बने शासकों से उदयसिंह ने लौहा भी लिया। वह द्वारका तक पहुंचा और रणछोड़ राय की पूजा भी की, यह स्थान शायद डाकोर रहा होगा। लगभग 1709 विक्रम संवत में लिखे गए '**अमरकाव्यम्**' जैसे ग्रंथ में कहा गया है यह घटना विक्रम संवत 1606 की है –

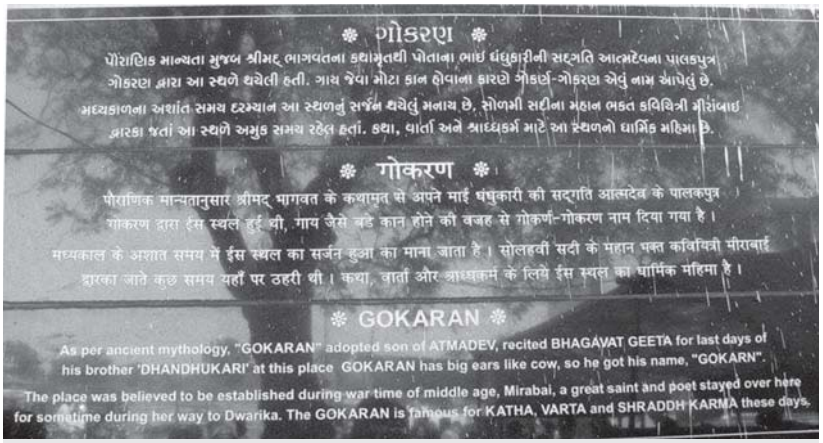

गुजरात का तीर्थ स्थान गोकर्ण, यहां मीराबाई का विहार रहा। चित्र : हर्ष पटेल

अतीते षोडशशते षडाख्येब्दे हरिप्रियः।
श्रीमानुदयसिंहेन्द्रो महती सेनया युतः।।
तर्जयन्गुर्जरेशादीन् निर्जरो निर्जरार्चनः।
जर्जरीकृतवैरीन्द्रो जगाम द्वारकां प्रति।।
तत्र श्रीरणछोडस्य पूजां कृत्वा विधानतः।
तुलां रूप्यमयीं चक्रे प्रददौ पुरमण्डलै।।
द्वारकावासी विप्रेभ्यो वेराख्यं ग्राममुत्तमम्।
द्वितीयग्राममन्यच्च दानानि बहु दत्तवान्।। (अमरकाव्य 14, 7–10)

इसमें वेर नामक ग्राम का जिक्र आया है जिसको दान किया था, अन्य ग्राम का नाम भी आया है। यह ग्राम कौन सा है, क्या उसके साथ मीरा का कोई संबंध रहा है। हमें इस संबंध में कुछ विचार करना चाहिए। यही नहीं, हमें सोशल मीडिया का इस खोजबीन के लिए भी प्रयोग करके कुछ नवीन प्रामाणिक जानकारियां जुटाने का प्रयास करना होगा।

– लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
संपर्क: विश्वाधारम, 40 राजश्री कॉलोनी, विनायक नगर, उदयपुर 313001 (राजस्थान)मो. 992807276

कला समय का बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

आपका बहुमूल्य आर्थिक सहयोग पत्रिका के लिए संजीवनी होगा।

आलेख

लोक संस्कृति में 'हाथा' की परम्परा

डॉ. सुमन चौरे

हमारी लोक परम्पराएँ बड़ी समृद्ध हैं, जिनका हम हमारे परिवारों में पीढ़ियों से पालन करते आ रहे हैं। इन परम्पराओं को मैंने बचपन में अपनी माँ, आजी माय, काकी, मामी आदि को जैसे करते देखा या अपनी ससुराल में आजीसास, सास, नणन्दों, जेठानियों, देवरानियों आदि को करते देखा, बस उसी तरह मैं भी उन समस्त परम्पराओं का निर्वहन करती जा रही हूँ। जस की तस करती जा रही हूँ। मैं चाहती हूँ, कि मेरे बाद भी मेरे परिवार में और सकल लोक में ये परम्पराएँ सतत चलती रहें। मुझे भले ही इन परम्पराओं के उद्भव का मूल कारण ज्ञात न हो, लेकिन कोई ठोस आधार तो रहा ही होगा इनके उद्भव और इनके सतत चलते रहने का।

प्रसंगवश एक घटना याद आ गई। दीवाली के तीन दिन पूर्व हम गोवत्स द्वादशी के दिन गाय और बछड़े की पूजा करते हैं। उसका नाम निमाड़ में 'वजबारस' है, जिसे हम 'गाय-केड़ा' (गाय-बछड़ा) की पूजा करना भी कहते हैं। इस पूजा में महिलाएँ सर्वप्रथम गाय के खुरों पर दही चढ़ाकर कुंकुम, अक्षत, पुष्प आदि से पूजा करती हैं। फिर गाय और केड़ा के खुरों पर दही और पानी में भिगोई हुई पिसी हुई हल्दी का गाढ़ा-सा घोल लगाया जाता है। इसके बाद गाय एवं केड़ा के ऊपर हल्दी के घोल से पाँच-पाँच हाथे दिए जाते हैं। हथेली में हल्दी का घोल लेकर दोनों हथेलियों को आपस में रगड़कर घोल एक जैसा फैला लिया जाता है, फिर गाय की पीठ पर दो-दो की जोड़ी से हल्दी लगे हाथों से छापे दिए जाते हैं। चार हाथे उसकी पीठ पर और सीधे हाथ की हथेली का उसके मस्तक पर दिया जाता है। इसी तरह पाँच हाथे केड़ा की पीठ पर भी दिए जाते हैं। फिर कुंकुम-अक्षत से पूजा की जाती है। उनकी पीठ पर हल्दी मिले हुए आटे से बने पाँच दीये रखे जाते हैं और पुष्प चढ़ाकर नया वस्त्र ओढ़ाया जाता है। इसके बाद गो माता की आरती उतारी जाती है। नैवेद्य के रूप में गाय को खाने के लिए चवला और जुवार, कच्चा भी और बना हुआ भी, दिया जाता है।

गाय और गोवंश को कृषि के लिए वरदान माना जाता है। इसलिए गाय-केड़ा की पूजा करके हल्दी से हाथे दिए जाते हैं। यह एक प्रकार से गोवंश के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन है, कि आपके कारण हमारे खेतों ने फसल उगली है, आपसे घर में समृद्धि आई है, अत: आपके प्रति आदर भाव से हम आपको ठण्डे हाथे देते हैं।

गाय-केड़ा की पूजा करके घर आकर पात्र में शेष हल्दी के घोल से दोनों कवळों (मुख्य द्वार के चौखट के दोनों ओर की दीवारें) पर पाँच-पाँच हाथे दिए जाते हैं। कवळों पर हाथे उसी तरह दिए जाते हैं, जैसे कि गाय-केड़ा पर दिए गए थे। दो-दो हाथे ऊपर-नीचे और एक हाथा बिल्कुल बीच में सबसे ऊपर। कवळे पर दिए गए इन हाथों की पूजा की जाती है, कुंकुम, अक्षत और पुष्पों से।

मैं कवळे पर हाथे दे रही थी, तभी मेरे देखा-देखी मेरी छह साल की पोती ने भी नीचे झुककर बिल्कुल मेरी तरह ही पाँच-पाँच हाथे देकर पूजा कर ली। सलोने-से छोटे-छोटे हाथे बड़े मनमोहक लग रहे थे। मैं उसके हाथे देख रही थी, उसी क्षण उसने ज़ोर से आवाज़ लगाई, 'यहाँ आओ दादा! देखो, मेरे हाथे। मेरा आधार, मेरी पहचान।' कुछ दिन पहले ही हम उसका आधार कार्ड बनवाने गए थे। पोती के भाव देखकर मैं खुशी से फूली नहीं समायी, मैंने सोचा कि ये बच्ची क्या कह गई। इतनी छोटी-सी बच्ची ने इतनी बड़ी बात

एक वाक्य में समझा दी। 'हाथों' का विज्ञान समझा दिया। 'हाथे' देने की परम्परा के मूल तक पहुँचा दिया।

'हाथा' देना तो एक तरह से निमाड़ की लोक संस्कृति की पहचान है। हल्दी के हाथे, कुंकुम के हाथे, दही के हाथे, दूध के हाथे, घी के हाथे। निमाड़ की लोक परम्परा में तो अवसर-अवसर पर हाथे दिए जाते हैं।

'हाथे' देना शुभ-मंगल का प्रतीक है और उस अवसर की ज्ञेयता भी करवाता है। हमने यह कृत्य सुसंपन्न किया, उसकी पहचान इति स्वरूप कवळे पर पाँच-पाँच हाथे देने की परम्परा है। भाव-विभोर हो गई मैं तो। कभी नन्ही पोती के हल्दी भरे हाथों को देखती, तो कभी कवळे पर उसके 'हाथों' को देखती। मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। मानो मैं, इस क्षण को बन्द कर लेना चाहती थी। तभी मुझे दिखाई दिया 'हाथों' का लम्बा इतिहास, कालमुखी वाले घर के आँगन से लेकर पिछवाड़े के द्वार तक। यादों के ताले खुलते-टूटते चले गए।

आँगन, घर की छान, पिछवाड़ा, सब दूर हाथे ही हाथे। घर के मुख्यद्वार के कवळों पर हाथे, छोटी और मोटी उँगलियों के, चौड़ी हथेली के निशान। यह हाथे तो मेरी छोटी आजी के हैं, मुझे दिखाई दी उनकी नाक पर लटकती छोटी-सी नथ, जब वे हाथे देती थीं, तो झुमक-से हिलती थी। वज-बारस के दिन कोरी साड़ी पहनती थी छोटी आजी। छोटे कद की मुंसेण माय की हाथों में हल्दी होने का कारण कोरी रेशमी साड़ी सिर पर से सरकती थी, तो वे एक कोहनी से उसे सिर पर कर लेती थीं और दूसरी कोहनी से पल्लू पकड़कर मुँह में दबा लेती थीं, जिससे कि साड़ी सिर से फिसले नहीं। मुझे दिखे ये छोटे से हल्दी से लथपथ हाथे उनकी अन्नपूर्णा प्रकृति के प्रतीक हैं। बड़े से हाथे, एक दूसरे से दूर ऊँगलियाँ और अँगूठे। दीवाल पर बहुत ज्यादा जगह घेरे हुए। दयालु, सदाशय और खुले हाथ जैसे खुले मन की थीं वे। अन्न-धन सब कुछ खुले मन से बाँटने वाली मेरी आजी माय की कृपालु प्रवृत्ति के दर्शन कराते थे। माता की छान में दोनों कवळों पर बड़े सुन्दर-से हाथे, न एक भी सुराख ऊँगलियों के बीच, न अँगूठा दूर। बिल्कुल पान के आकार के हाथे। यह हाथे मेरी मोठी माय (परिवार की बड़ी बहू) के रहते थे। उनके संयमित जीवन शैली और मितव्ययता की पहचान करवाते थे।

रसोई के कवळे पर लगे हाथे देखकर कोई भी पहचान जायगा कि ये बड़ी बाई, इचली (मझली) बहू के हैं। गद्‌गद हल्दी से भरे हाथे। खुली अंगुलियाँ, दूर अँगूठा, उनके खुले हाथ, उदार मन के प्रतीक थे। बड़ी-बड़ी अंगुलियाँ, बड़ा-सा अंगूठा। अंगुलियोँ से दूर अंगूठा दीवाल पर छद से छदी हल्दी। यह तो छोटी बाई का ही हाथ है। घर-गृहस्थी के काम करते हाथ, कोई भी बता देगा, कि काम करता हाथ है। वहीं एक छान के कवळे पर बड़ा सुन्दर हरे मूँग की सेंगळई (फल्ली) जैसी पोरदार अंगुलियाँ और उसके करीब नाजुक अंगूठा, दीवाल पर ऐसा छाया कि कहीं दीवाल को पीड़ा न हो जाय, पर हल्दी चिपक न जाय, इस मृदुभाव से लगे हाथे। वहीं लचीली कमर सुन्दर नाजुक वदना मण्डलेश्वर वाळई लाड़ीबाई के होते थे।

हाथे वास्तव में पहचान होते हैं। व्यक्ति के आँगिक बनावट के, उसके आचार-विचार के, उसकी मनः स्थिति के। चिरकाल से यह परम्परा क्योंकर चली आती है, अगर इसमें कोई ठोस तत्त्व न होता तो? लोक परम्पराओं की जड़ें बड़ी गहरी हैं।

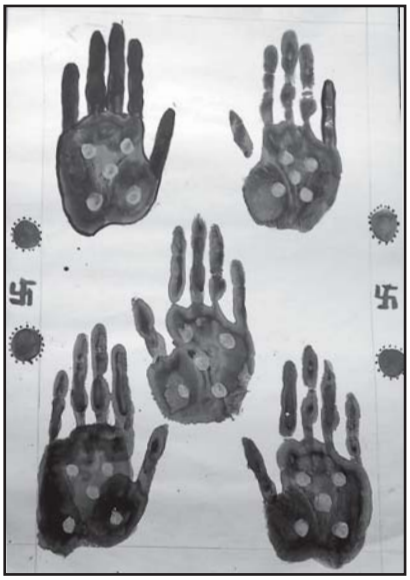

साधारणतः लिपीपुती दीवालों के कवळों पर लगे हाथे घर को अलंकृत करते हैं। इनसे घर शुभदायी दीखते हैं। विभिन्न लोक भित्ति चित्रों व अलंकरणों जैसे जिरोती, नाग, साँझाफूली आदि में विविध अलंकरणों के साथ ही पाँच-पाँच हाथे भी बनाए जाते हैं। ये हाथे उन सामूहिक लोकचित्र अलंकरणों में से एक होते हैं, अतः उसी रंग और तरीक़े से बनाए जाते हैं, जैसे समूह में बने अन्य लोकचित्र, जैसे साँझाफूली का हाथा गोबर थाप कर ही बनाया जाता है, तो जिरोती में पीवळे रंग से और नाग में काले रंग से। ये सभी रंग प्राकृतिक सामग्री से घर में ही बनाए जाते हैं।

हाथे कितने, किस सामग्री से और किस तरह दिए जाना है, इसकी भी एक रीति रहती है। संख्या के हिसाब से एक हाथा या पाँच हाथे दिए जाते हैं। जब कवळे पर दिए जाते हैं, तो पाँच-पाँच हाथे दोनों ओर देने का विधान है। प्रसंग और अवसर के अनुसार हाथा विभिन्न सामग्रियों से दिए जाते हैं जैसे हल्दी, चोखा (चावल), घी, दही, दूध, गोबर या सामग्री पर सीधा खाली हाथा। आवश्यकतानुसार इनमें से कुछ सामग्रियों में अल्प मात्रा में पानी मिला लिया जाता है। आमतौर पर हाथा ऊर्ध्वमुख अर्थात् सीधा होता है, जिसमें अंगुलियाँ ऊपर की ओर होती हैं। 'हाथ्यो गरज्यो' का हाथा अधोमुख यानी उल्टी हथेली से - नीचे अंगुलियों वाला दिया जाता है। हल्दी के हाथे देने के बाद उनके बीच में कुंकुम और अक्षत लगाए जाता हैं, किन्ही प्रसंगों पर पुष्प भी चढ़ाए जाते हैं। इससे हाथे संपूर्ण हो जाते हैं और बड़े ही मनमोहक दीखते हैं।

षोडश संस्कारों में से कई संस्कारों को संपन्न करने के लिए की जाने वाली परम्पराओं में भी 'हाथा' दिए जाते हैं। प्राय: शिशु जन्म के ग्यारहवें दिन उसका नामकरण संस्कार होता है। इससे पूर्व सौड़ उत्थान की क्रिया की जाती है। मंगल स्नान के बाद प्रसूता, उस स्थान पर हल्दी के हाथे देती है, जिस स्थान पर शिशु गर्भ से बाहर आता है। पहले तो घर में ही प्रसव होते थे, अत: माता उस स्थान पर हल्दी के हाथे देती है, जिस स्थान उस पुण्यात्मा के धरती पर आगमन का प्रथम क्षण था। संतानोत्पत्ति से माँ धन्य हो गई, इसलिए उस स्थान के प्रति कृतज्ञ भाव ज्ञापित करती है। वैसे प्रसूता जब घर में प्रवेश करती है, तब भी प्रसूति गृह के दोनों कवळों पर हल्दी से पाँच-पाँच हाथे देती है, प्रत्येक हाथे पर कुंकुम-अक्षत लगाती है। यह भाव पारिवारिक आदर सम्मान एवं वंश वृद्धि का प्रमाण होता है।

निमाड़ में विवाह संस्कार के अवसर पर हल्दी के हाथों का बड़ा-ही मंगल विधान है। विवाह का मुहूर्त निकलने के बाद, सर्वप्रथम शीतलामाता एवं ग्राम देवता को निमंत्रण दिया जाता है। मन्दिर जाकर माता पूजन करने के बाद थाली में हल्दी और पानी का घोल बनाकर वरमाय (वर और वधू की माता को वरमाय कहते हैं) देवी के स्थान पर, कवळों पर हल्दी के हाथे देती है। वरमाय की ब्याहने वाली संतान के उन हाथों पर पर कुंकुम चढ़ाकर उनकी पूजा करती है। फिर माता पूजन करके घर लौटने पर घर के मुख्यद्वार के कवळों पर भी उसी थाली के घोल से हाथे दिए जाते हैं। यह प्रतीक है, कि इस घर में विवाह संस्कार प्रारम्भ हुआ है।

मण्डप के दिन चोखा (चावल) को पानी में भिगोकर पीसा जाता है। इस घोल से सुहागिन बेटियाँ मण्डप के खम्ब पर हाथे देती हैं, और उनपर कुंकुम-अक्षत लगाती हैं। इसी दिन कुलदेवी की प्राण प्रतिष्ठा की जाती है। कुछ परिवारों में ईरीत (कुलदेवी का एक स्वरूप) बनाते हैं। इस तरह कुलदेवी या ईरीत में से कोई एक ही बनाते हैं। कुलदेवी का घर कुंकुम की रेखाओं से सूपड़े पर लगाए गए श्वेत वस्त्र पर बनाया जाता है। जबकि ताव (सफ़ेद कागज़) पर कुंकुम से ईरीत बनाकर इस कागज़ को दीवाल पर लगाते हैं। कुल की परिवार की परम्परा के अनुसार कुलदेवी और ईरीत के दोनों ओर कुंकुम से या हल्दी से या फिर पानी में भिगोकर पीसे गए चोखा के घोल से हाथे देती हैं। सवा साल तक कुल देवी के घर में हाथे बने रहते हैं।

अग्निफेरा अर्थात् सप्तपदी के अवसर पर 'हाथा साड़ी, खोळा साड़ी' की परम्परा है। इसमें वरपक्ष के दो जवाई (दामाद) और वधूपक्ष के दो जवाई आजूबाजू में बैठाए जाते हैं। वधू उन चारों जवाइयों की पीठ पर, एक के बाद एक, हल्दी के चार-चार हाथे और सिर पर एक-एक हाथा देती है। वर अपने एक हाथ में आरती की थाली पकड़कर वधू के पीछे पीछे चलता जाता है। वधू द्वारा जवाइयों की पीठों और सिरों पर दिए गए हाथों पर वर कुंकुम और अक्षत चढ़ाता चलता है। वे चारों जवाई वधू को कुंकुम लगाकर साड़ी भेंट करते हैं। इस अवसर के हाथे इस आश्वासन के प्रतीक हैं, कि वर-वधू अपने आचरण से दोनों पक्षों के बृहत्तर परिवारों को समान दृष्टि से देखेंगे, उन्हें सुखी रखेंगे और साथ ही ये आश्वासन भी लेते हैं, कि यह बृहत्तर परिवार सदैव उनका साथ निभायगा और जीवन पथ पर उनका मार्गदर्शन करता रहेगा। यहाँ भी हाथा देने का तरीका वैसा ही है जिस तरह से 'वजबारस' पर गाय एवं केड़ा की पीठ पर चार हाथे और एक हाथा सिर पर दिया जाता है।

परिणय संस्कार के बाद बेटी की विदाई की वेला अत्यधिक करुण होती है। विदाई की परम्परा का एक प्रमुख अंग है वधू द्वारा अपनी माता की कोख (कुक्षी) पर दही के हाथे देना। दही में थोड़ी-सी हल्दी मिलाई जाती है। माता की कोख पर वधू हाथे देती है और दामाद उनपर कुंकुम लगाकर उसे पूजता है। इस अवसर का हाथा वचनबद्धता का एक प्रतीक है। इसके माध्यम से बेटी अपनी माता को वचन देती है- 'मैं तेरी

कोख को शीतलता प्रदान करूँगी और लजाऊँगी नहीं।' वहीं वर द्वारा हाथे की पूजा करना प्रतीक है उसके इस आश्वासन का – 'मैं आपकी बेटी का साथ हर परिस्थिति में निभाऊँगा और मैं भी आपकी कोख के प्रति सदा कृतज्ञ रहूँगा।'

विदाई के पश्चात् वधू जब अपने पति के घर आती है तब उसे ससुराल की रीति के अनुसार कुलदेवी के दर्शन करवाए जाते हैं और ववू (बहू) के हाथों से अन्न भण्डार को स्पर्श करवाया जाता है। इसी क्रम में दही से भरे बर्तन में ववू हाथ डालती है और दही से देवी के सामने दीवाल पर दही का हाथा देती है। इसके बाद घीव (घी) के पात्र में रुप्पा (चाँदी) की एक मूँदी (मुद्रिका) डाल दी जाती है, जिसे ववू उस पात्र में हाथ डालकर निकालती है। फिर उसी मूँदी को अँगुली में पहनकर घीव का हाथा देवी के पास की दीवाल पर देती है। घी का हाथा दीवाल पर कई साल तक बना रहता है। गोबर माटी की बनी भीत (दीवाल) पर बना नवी ववू का यह हाथा तो सालों साल उभरा रहता था, यह हाथा नवी ववू की पहचान होता है।

कन्याएँ कुआर महीने के पितृ पक्ष में हरे ताजे गोबर से दीवालों पर साँझाफूली बनाती हैं। इनमें गोबर से बनाए गए सूर्य, चंद्रमा, बैलगाड़ी, फूल-पौधे आदि विभिन्न अलंकरणों के साथ ही हाथे भी थापे जाते हैं। इन सबको फूलों से सजाया जाता है। बड़ी सुन्दर भित्ति अलंकरण है साँझाफूली।

हाथा देने की यह बड़ी लम्बी परम्परा है। निमाड़ में अन्तिम संस्कार के लिए शवयात्रा शुरू होने से पहले घर से जब मृतक को विदा किया जाता है, तब उसके शरीर पर हल्दी के हाथे लगाए जाते हैं। ऐसी मान्यता है, कि शरीर तो नश्वर है, नष्ट हो जायगा; किन्तु ये हाथे सदा उसके साथ रहेंगे। अगले जन्म में उसके शरीर पर कहीं न कहीं ये हाथे बने दिखाई देंगे।

हाथा तो सामाजिक सामंजस्य का भी एक पहलू है। गाँव में प्राय: प्राय: सभी के घरों में पशुधन रहता है। जिनके घर अधिक पशु होते हैं, वे लोग अपने घरों से गोबर किसी खलिहान या खुले मैदान तक ले जाकर वहाँ कण्डे थाप देते हैं। उसी स्थान पर अनेक लोगों के थापे हुए कण्डे सूखते हैं। लेकिन आश्चर्य की बात यह है, कि कोई गलती से भी किसी और व्यक्ति के थापे हुए कण्डे अपने कण्डों के साथ ले जाय। हरेक कण्डे पर उसे थापने वाले की पहचान होती है। सुन्दर से गोलाकर कण्डे थापने वाला उनपर अपना हाथा दे देता है। ये हाथे ही अपने अपने कण्डों की पहचान होते हैं।

कोई भी परम्परा तब तक ही जीवित रहती है, फलती-फूलती है या टिकी रहती है जब तक कि उसे लोक मान्यता मिलती रहे। परम्पराओं का सहज प्रभाव और प्रवाह होता है। वे ही पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती हैं। इनसे लोक आस्था जुड़ी हुई हैं। हाथा का उपयोग दान देते समय भी किया जाता है। लोक मान्यता है कि इस लोक में दान करेंगे तो मरण के बाद उस लोक में उसका फल मिलेगा। किसी मन्दिर में या किसी व्यक्ति को अन्न दान करते हैं, तो दान लेने वाले के सामने अन्न का ऊँचा-सा ढेर लगा देते हैं। फिर उस ढेर को ऊपर से थोड़ा फ़ैलाकर उस पर अपने सीधे हाथ से एक हाथा दे देते हैं। फिर अन्न पर अंकित इस हाथे के बीच में एक सिक्का या फिर एक फूल रख देते हैं। आटा, सत्तू या बेसन जैसी पीसी गई सामग्री दान करते हैं, तब भी ऊपर से हाथा दे देते हैं। एक तो इससे सामग्री को हथेली से दबाकर उसी पात्र से अधिक दान दिया जा सकता है। साथ ही हाथा देने से दान दी जा रही सामग्री पर हस्त रेखाएँ दिखने लगती हैं। इस हाथा पर सिक्का रखकर दान किया जाता है। लोक मान्यता है कि भगवान् ने असंख्य हाथ बनाए हैं। किन्तु किसी भी हाथ की रेखाएँ और बनावट दूसरे हाथ से मिलती नहीं हैं। अत: जो दान देना है, उसपर हाथ की छाप लगा देना चाहिए, ताकि भगवान् पहचान जाय कि किस हाथ ने क्या दान दिया है। ऐसा करने से पुण्य उसे ही प्राप्त होगा जिसने हाथा देकर दान दिया है।

कुआर मास में हस्त नक्षत्र में बादल गरजते हैं, तो कहते हैं 'हाथ्यो गरज्यो'। कुआर के घाम को 'विश्वामित्र का घाम' भी कहते हैं। जैसे विश्वामित्र का तेज था, वैसा ही कुआर में घाम का तेज होता है। इसी तेज घाम में पकती हुई फसलें सूख कर तैयार हो जाती हैं। सूखती फसलों के लिए किरसानों में 'हाथ्यो गरज्यो' को लेकर चिन्ता रहती है। घर की स्त्रियाँ हाथ्या गरजने पर घर में तुरन्त घीव, दूध, दही, मही जो भी उपलब्ध हो, उनमें दाहिना हाथ डुबोकर चूल्हा के पीछे उल्टा हाथा देती हैं, यानी अँगुलियाँ नीचे की ओर। वे बादल से प्रार्थना करती हैं, कि हम तुझे आदर देते हैं, बरसना मत। यदि घर के बाहर हों, तो सीधे भूमि पर भी हथेली रखकर बादल से प्रार्थना कर ली जाती है। कृपावृष्टि की कामना दर्शाता है यह हाथा। यही एक हाथा है, जो कि अधोमुख दिया जाता है। अन्य सभी अवसरों पर हाथा ऊर्ध्वमुख रहता है।

मैं विचारों में मगन, अपने हाथा के ऊपर कुंकुम और अक्षत लगा रही थी, उतनी ही देर में मेरी नन्ही बच्ची ने कहा – 'दादी, कोई भी आयगा और इन सब हाथों को देखकर कहेगा – 'ये बड़े वाले दादी के हाथे हैं और ये छोटे वाले दादी की नानसी के हाथे हैं। है ना दादी, अपने हाथ अपनी पहचान। लो दादी मेरे आधार पर भी तो कुंकुम की सील लगा दो।' मैंने उसके आधार पर कुंकुम का ठप्पा लगाकर उसे पक्का कर दिया। मैं फिर सोच में पड़ गई कि कैसे इतनी छोटी उम्र की बच्ची ने हाथा का ज्ञान खुद भी समझ लिया और मुझे भी बता दिया, कि पारम्परिक ज्ञान सहजता से ही जिज्ञासावश एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाता है।

लेखिका – वरिष्ठ लोक संस्कृतिविद् हैं।
संपर्क: 13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्स्टेन्शन, बावड़िया कला,
पोस्ट ऑफ़िस त्रिलंगा, भोपाल-462039
मो.: 09424440377, 09819549984

■

आलेख

भारत भाव रूप श्रीकृष्ण

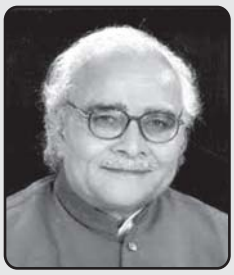

डॉ. राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी

आज होली के संदर्भ में एक पोस्ट डाली थी, तो दुबई से एक मित्र ने विस्मय प्रकट किया- श्रीकृष्ण होली कब खेले थे ? नयी बात नहीं है , नव भारत टाइम्स ने श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन श्रीकृष्ण के ब्रजभाव का एक चित्र छाप दिया ,तो हरियाणा के एक आर्य-व्रती स्वामीजी ने संपादक के नाम एक बहुत लंबा पत्र लिख दिया - यह तो अनर्थ हो गया ! गलत बात उनकी भी नहीं थी, किन्तु श्रीकृष्ण भारत के लोकजीवन में वर्तमान हैं। देश में हजारों-हजारों ही सांस्कृतिक-समूह हैं और वे अपने-अपने भाव के साथ श्रीकृष्ण के पास रहते हैं, उपासना अर्थात् पास बैठना या यों कहें कि श्रीकृष्ण उनके भावों में प्रत्यक्ष ही रहते हैं। तो अब अनुमान-प्रमाण भी बेचारा गया काम से। भारत में जितनी भी सांस्कृतिक-धाराएं हैं, वे लगभग सभी किसी न किसी रूप में श्रीकृष्ण में समाहित हो गयीं हैं और वे सब वर्तमान हैं, किताब की बात नहीं, जीवन की बात है, इसलिए अब किताब का भी क्या काम ?

चित्रकार इन भाव भावनाओं के आधार पर चित्र बना रहे हैं, मूर्तिकार मूर्तियां गढ़ रहे हैं, गवैए गीत गा रहे हैं, नर्तक नृत्य कर रहे हैं, कवि कविता रच रहे हैं, कथाकार कथा सुना रहे हैं। कीर्तनकार कीर्तन कर रहे हैं। नर नारी भांति भांति के लोकगीत गा रहे हैं। कोटि कोटि जन कृष्ण भाव को लेकर ब्रज भूमि, द्वारिका, कुरुक्षेत्र आदि की यात्रा करते हैं। कृष्ण चेतना का आंदोलन इस्कॉन तो अब विश्वव्यापी बन चुका है। अमरीका में वृंदावन की प्रतिष्ठा हो चुकी है। बंगाल की कहावत है

धान बिना खेत नहीं, कान्हा बिन गीत नहीं।

श्रीकृष्ण हरि भी हैं न, हरिमन्दिर साहब में भी हरि के रूप से विराजमान हैं। इसके लिए हम केवल श्रीकृष्ण के नामों को लेकर ही चर्चा करेंगे।

यदुकुल : द्वारकानाथ : वृष्णिवीर

देवकीनन्दन, वसुदेवनन्दन, वासुदेव, यदुनन्दन, यदुकुलनन्दन, अन्धक-वृष्णिनाथ, दाशार्हनन्दन, जदुनाथ, जदुराई, यदुवीर, यदुवंश-विवर्धन, यदुसुखावह, यदु-कुलश्रेष्ठ, शौरि, यादवेश्वर, यादवनन्दन। वृष्णिशार्दूल, वृष्णिकुलोद्वह, वृष्णिनन्दन, वृष्णिसत्तम। इस बात के अनेक सन्दर्भ मिलते हैं कि कृष्ण यदुवंशियों के कुलदेवता के रूप में पूज्य थे। वज्रनाभ कृष्ण की वंश-परम्परा में था और उसने कृष्ण की स्मृति में मन्दिरों का निर्माण कराया। पाञ्चरात्र- परम्परा में वृष्णिवीरों की पूजा तथा वृष्णिवीरों का तात्त्विक-विवेचन है।

श्रीकृष्ण : महाभारत-सन्दर्भ

महाभारत-सन्दर्भ से जुड़े हुए कृष्ण के नाम हैं- पार्थसारथि, पार्थमित्र, गीतागायक, द्रौपदी की लाज राखी, साग विदुरघर खाई, पाँचौ पंडा छठे नारायन, कौन्तेयप्रियवन्धु, पाण्डुरर्जुन-वल्लभः।

गोप-संस्कृतिपरक

'आभीरेन्द्रसूनुः। **कढ़िगौ अँबीर पै 'अहीर कौं' कढ़ें नहीं।' सूरदासजी का एक पद है - 'हम तौ नन्द-घोष के बासी। नाम गुपाल जाति कुल गोपक, गोप-गुपाल उपासी।'** गोविन्द और गोपाल नाम बहुत व्यापक हैं तन्त्रशास्त्र में गोपालसुन्दरी की आराधना है। गोपाल-चूड़ामणि, गो-गोप संघावृत, गोपस्त्री-परिवेष्टितो जैसे नाम गोपाल-सहस्त्रनाम में हैं। 'आगें गाय पाछें गाय इत गाय उत गाय गोविंद को गायन में बसिबौ ही भावै।' 'गोपी ग्वाल गाय गोसुत-हित सात दिवस गिरि लीन्हों।' गाय और गाय की विभूति से सम्बन्धित सभी नाम गोप-संस्कृति के सन्दर्भ-सूत्र हैं, जैसे - नवनीतप्रिय, छाछपिबइया, माखनचोर। 'सोभित कर नवनीत लिये।' गोकुलनाथ, गोकुलचन्द्रमा, गोकुलेश, गोवर्धननाथ, गोलोकनाथ।श्रीकृष्ण को गोविन्द गोपाल नाम ही प्रिय हैं, द्वारकानाथ, त्रिलोकीनाथ नाम उन्हें नीरस प्रतीत होता है -**प्यारौ नाम गोबिंद गुपाल कों बिहाय हाय, ठाकुर त्रिलोक के कहाय करि हैं कहा ?** (रत्नाकर) -

संस्कृति लोक-जीवन में प्रवाहित होती है। उपासक-समूह उपास्य-तत्त्व की रचना करता है। इस दृष्टि से गोप, आभीर, गूजर जनजातीय-तत्त्व महत्त्वपूर्ण हैं।

तमिलनाडु में आयर कहलाने वाले ग्वाल लोग मुल्लै वन-प्रान्त में गाय चराते और कण्णन के गीत गाते थे। क्या ये वे ही लोग हैं, जो यादवों के साथ दक्षिण-मथुरा चले गए थे ?

आगे चलकर हमें यादव-गोप और आभीर जातियाँ एक-दूसरे में समाहित होती हुई दृष्टिगत होती हैं, जिनका देवता 'गोपाल' है। रांगेयराघव ने आभीरों को गोपालदेवता का उपासक बताया है, जो ई.पू. 1500 में आक्रमण करते हैं। अर्जुन पर आभीरों के आक्रमण का उल्लेख भागवत में भी है। रांगेयराघव के अनुसार ई.पू. 800 के लगभग 'कृष्ण' आभीर देवता-गोपाल में अन्तर्भुक्त हुए थे। **अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावें। (रसखान) तथा 'हम तौ निपट अहीर बाबरी जोग दीजिये जानन'** (सूरदास)।

गोप-संस्कृति के सन्दर्भ में डॉ0 चन्द्रभान रावत का यह मत ध्यान देने योग्य है कि -कृष्ण का व्यक्तित्व कुछ दिन के लिए यादवों, वृष्णियों और सात्वतों के हाथ से छूट गया और उसका विकास कुछ ऐसी घूमन्तू पशुपालक-जातियों में हुआ, जो भारत में बहुत पहले ही आ गई थीं, जो बौद्धिक अनुष्ठानों से अधिक महत्त्व अपनी स्वच्छन्द भावात्मक संस्कृति को देती थी, जिनका लोक-साहित्य सरस और प्रेमपरक था। एक गोप के रूप में कृष्ण का विकास हुआ। अपने घूमन्तू -जीवन में कृष्ण ब्रजभूमि में पलती-पनपती अन्य संस्कृतियों के सम्पर्क में भी आए और धीरे-धीरे उन सबका विलयन गोपसंस्कृति में हो गया। 'श्रीराधा के क्रम विकास' में डॉ. शशिभूषणदास गुप्त ने इस पर विस्तार से विचार किया है।

ब्रज-परिकर और ब्रजलीला-सन्दर्भ

ब्रजाधिप, ब्रजभूषण, गोकुलभूषण, गिरिधर, मधुवनिया, गोकुल-चन्द्रमा, ब्रजराय, बलवीर, हलधरजू कौ भैया, बलानुज, नन्दसुवन, नन्ददुलारे, नन्दकिशोर आदि कृष्ण के ब्रजपरिकर सन्दर्भित नाम हैं।

ब्रजलीला सन्दर्भित नामों को हम पाँच वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं - असुर-निकन्दन, वात्सल्य- भाव, सखा-भाव, कान्ता-भाव और निकुञ्ज-भाव।

(क) श्रीकृष्ण : असुरसंहारक : असुर-निकन्दन - गोपालसहस्त्रनाम में कृष्ण के नाम हैं- यमलार्जुन मुक्तिदः, अघासुरविनाशी, तृणावर्तान्तको, धेनुकासुरसंहारी, बकासुर विनाशनः, शकटासुरसंहारी, भांडीरवन शंखहा, पूतनामोक्षदायकः। कंसनिकन्दन, भूभार हरन, मधुसूदन, कालियमर्दन, कंसारि, केशीमर्दन आदि कृष्ण के असुरसंहारक सन्दर्भित नाम हैं। यह कृष्ण का वीर-रूप है।

(ख) वात्सल्यपरकः छगनमगन, लाला, जसुदादुलारे, प्यारौलाल, बालकृष्ण, बालगोविन्द, बालमुकुन्द, बालगोपाल, यशोदानन्दन, नन्दजू कौ ढोटा, लाड़लौ, नन्दनन्दन, नन्दलाला, कान्हा, कन्हैया, कनु, कन्हाई, कानड़ा आदि।

(ग) सखा-भाव - ब्रज-सखा, ग्वाल-सखा, गोप-सखा।

(घ) कान्ता-भाव : चोर-जार-शिखामणि - कान्ता-भाव में श्रीकृष्ण चोर-जार-शिखामणि हैं। लम्पट हैं। छैला हैं। बहुनायक हैं। ढीठ और लँगर हैं। नटखट, चञ्चल, चपल, छैल छबीला, छलिया, प्यारौ मतबारौ, मधुलम्पट, रसिया, रंगीलौ, भाँरा और मधुकर तो हैं ही चितचोर, माखनचोर, चीरचोर भी हैं। सूरदास ने उन्हें चोर के राज (सूरसागर, पृ0 906) भी कहा है। महावाणी में 'लम्पट' के साथ 'ठगभूप' तक कहा गया है।

वे रतिनागर हैं।

(ङ) रमण, वल्लभ, कान्त, मोहन, किशोर - ब्रजरमण, वृन्दावन-रमण, राधारमण, गोपी-रमण, तुलसीरमण। राधावल्लभ, गोपीवालभ, ब्रजवल्लभ । राधाकान्त, गोपीकान्त, श्रीकान्त । मनमोहन, मदनमोहन, राधामोहन, ललितामोहन। गोपीमोहन। 'मोहन बदन विलोकति अँखियन।' यमुनाकृष्ण : कालिन्दीप्रेमपूरकः । कुब्जाकृष्ण । नवलकिशोर

नन्दकिशोर। ब्रजमण्डल में बहुलाविहारी, वृन्दावनविहारी, बाँकेबिहारी, किलोल-बिहारी, रमणविहारी,

(च) विहारी अप्पाराविहारी,बच्छविहारी, राधाविहारी, कमलविहारी, प्रेमविहारी, संकेतविहारी, कोकिलाविहारी, शाहविहारी दानविहारी, बिलकृविहारी और ब्रह्माण्डविहारी के मन्दिर हैं। रासविहारी, रसिकविहारी, गोलोकविहारी,

ब्रजविहारी, कुञ्जविहारी, मानविहारी आदि कृष्ण के शताधिक नाम हैं। ब्रजमण्डल में जगह-जगह इनके मन्दिर विद्यमान हैं।

(छ) निकुञ्जभाव - लड़ैते, लाल, भाँवते, प्यारे, प्रियतम, रसखान, लाड़लीलाल, रसनिधि, रतिनागर, कृष्ण के रसपरक नाम हैं।

(ज) सौन्दर्यपरक नाम श्रीकृष्ण के सौन्दर्यपरक नाम हैं - पीताम्बर, कौस्तुभधर, वनमाली, कस्तूरी तिलकं ललाटपटले, कोकिलास्वर-भूषणः (गोपाल सहस्त्रनाम) ब्रजसुन्दर, भुवनसुन्दर, श्यामसुन्दर, साँवरी- सलौनौ, छबीलौ, सामलिया, सोहन, कमलनयन, अरविन्द नेत्र, कारीकामरबारौं, कमलीवाला, मोर-मुकटवारी, मालाधारी। कृष्ण-वर्ण के सूचक नाम हैं- घनश्याम, कारौ, साँवलसेठ, श्याम, नीलमणि ।

(झ) लालित्य और नागरता के सूचक नाम - नटवरनागर, नटवरवपु, नवनीतनट, रतिनागर और मीरा के प्रभु गिरिधर-नागर। संगीत भी उनकी विशिष्टता है- कलवेणु-वादन-परः। वे षोडश कला निधान और सकलगुन-आगर हैं।

(ज) शब्द-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण - शब्द-रचना की दृष्टि से नाथ, नायक, ईश्वर, पति, आनन्द, निधि और नन्दन-भाव के नाम हैं -

(1) नाथ श्रीनाथ, गोकुलनाथ, द्वारकानाथ, ब्रजनाथ, मथुरानाथ, गोवर्धननाथ, त्रिलोकीनाथ, यदुनाथ, गोपीनाथ, रंगनाथ, जगन्नाथ, प्राणनाथ, गोलोकनाथ, बैकुण्ठनाथ।

(2) नायक ब्रजनायक, लीलानायक, अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक।

(3) पति - रुद्रपति, गगनपति, लोकपति, ब्रह्माण्डपति, भुवनाधिपति, मधुपति।

(4) ईश्वर - द्वारकेश, व्रजेश, वृंदावनेश्वर, रसेश्वर, रासेश्वर, व्रजाधीश, वल्लभाधीश।

(5) आनन्द आनन्दकन्द, आनन्दनिधि, परमानन्द, सर्वानन्द, पूर्णानन्द, नित्यानन्दः नन्दन।

(6) नन्दन गोपनन्दन। व्रजनन्दन, यदुनन्दन, त्रिभुवननन्दन, यदुकुलनन्दन, नन्दनन्दन, यशोदानन्दन, राधानन्दन,

(7) निधि - रूपनिधान, गुणनिधान, कृपानिधि, दयानिधि, करुणाधाम। भक्त विरह कातर करुनामय। अति गम्भीर उदार उदधिहरि।

(ट) भक्त-भाव भक्तवच्छल, दीनबन्धु, कृपानिधि, दीनदयाल, दुखहरन, मंगलकरन, दीनानाथ, अशरणशरण, अधमउधारन, सन्तनसुखकारी।

(ठ) अन्य किट्टन, किट्टू, उणिकुट्टन। कन्हैया, कान्हा, कनु, कानड़ा, कन्हाई (हम देखे इह भाँति कन्हाई), कण्णन पाडु,

कामदेव, चन्द्र और इन्द्र की अन्तर्भुक्ति कामदेव की अन्तर्भुक्ति कृष्ण में हुई। तन्त्रशास्त्र में कृष्ण को कामदेव माना गया है। गोपालसहस्त्रनाम में मीनकेतन: कामकला निधि:, कामी, कामदेव, कामबीज-शिरोमणि:, और क्लींदेव श्रीकृष्ण के नाम हैं। मदनमोहन मदनगोपाल। रिझई मदन-गुपाला, साक्षात् मन्मथ-मन्मथ: ।

रासलीला कामविजय की गाथा है। विजित-देवता विजयी-देवता में अन्तर्भुक्त होता है। काम-पूजा की परम्परा थी और वह कृष्ण-भक्ति में अन्तर्भुक्त हुई। भागवत में कामदेव को वासुदेव का अंश कहा गया है - **'कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना।'** (10.55.01) प्रद्युम्न काम का अवतार है।

चन्द्र : गोकुलचन्द्र, ब्रजचन्द्र, यदुकुलचन्द्र, वृन्दावनचन्द्र ।

इन्द्र : गोकुलेन्द्र, व्रजेन्द्र, गोविन्द।

श्रीकृष्ण : परब्रह्म : रस

परब्रह्म श्रीकृष्ण के नाम हैं - अव्यय, अधिदेव, अच्युत, अनन्त, अनादि, अखण्ड, अव्यक्त, भूतेश्वर, भूतपति, सनातन, विश्वतोमुखी, आदिकर्ता निर्गुणोनित्यो, आनन्दकन्द सच्चिदानन्द। अप्रकट-परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं और प्रकट-परब्रह्म श्रीकृष्ण हैं। ब्रह्म की अवधारणा कृष्ण-अवतार में समाहित होती हैं। श्रीकृष्ण परब्रह्म के पर्याय बन जाते हैं - 'परब्रह्म तु कृष्णोहि सच्चिदानंदकं बृहत्।' (वल्लभाचार्य)

कृष्ण में नारायण तथा विष्णु की अन्तर्भुक्ति

भगवान नारायण, जनार्दन, मधुसूदन, मुकुन्द, गरुड़गोविन्द, शेषशायी, मुरारि, केशव, गरुड़ध्वज, माधव, पुरुषोत्तम, श्रीनाथ, दीनानाथ, बैकुण्ठनाथ, पुण्डरीकाक्ष, कमलनाभ, पद्मनाभ, चक्रधर, चक्रपाणि, चक्रगदाधर, शंखचक्र-गदापाणि, गदाधर, उपेन्द्र, दामोदर, श्रीपति, श्रीधर, श्रीनिधि, शार्ङ्गधनुर्धर, शार्ङ्गी, सत्य, सुपर्णकेतु, मधुपति, त्रिविक्रम, जगतपिता, जगदीश, जगद्गुरु, क्षीराब्धिशयन:, पुण्यश्लोक आदि कृष्ण के ऐसे नाम हैं, जो कृष्ण में नारायण तथा विष्णु की अन्तर्भुक्ति के प्रतीक हैं। 'श्रीकृष्ण गोविन्द' हरे मुरारि, हे नाथ नारायण वासुदेव।'

'भागवत धर्म एवं अवतारवाद की प्रतिष्ठा तथा विष्णुनारायण वासुदेवकृष्ण का एकीकरण ईसवी-पूर्व की शताब्दियों में तमिल-देश में सम्पन्न हो गया था।' 'परिपाडल' नामक काव्य में विष्णु मुरली धारण करते हैं और गोप-वधुओं के साथ रास-क्रीडा भी करते हैं। वासुदेव-पूजा का प्राचीनतम अभिलेख हेलियोडोरस का है। यह यूनान का था, यवन था, लेकिन इसने अपने को भागवत कहा है। मध्यप्रदेश में विदिशा के निकट बेसनगर-ग्राम में एक गरुड़स्तम्भ या गरुड़ध्वज है जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी का माना जाता है। इसे हेलियोडोरस ने स्थापित किया था।

लेखक- वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
संपर्क- 1828 हाउसिंग बोर्ड कालोनी, सेक्टर- 13-12
पानीपत- 132203(हरियाणा), मो.- 9996007186

'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क की सूचना

प्रिय पाठकों,

सदस्यों से अनुरोध है कि अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन (15 वर्षीय) सदस्यों की सदस्यता अवधि के 15 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12,000 (संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 150/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

भारतीय जनजातीय ज्ञान-परंपरा और जीवन-दर्शन

लक्ष्मीनारायण पयोधि

जनजातीय ज्ञान-परंपरा' पर विमर्श के लिये भारत की जनजातियों से संबंधित दो प्रमुख बिन्दुओं पर विचार किया जाना होगा। पहला बिन्दु है- ज्ञान-परंपरा और दूसरा है- जीवन-दर्शन। हम सब जानते और मानते हैं कि भारत में जनजातीय ज्ञान-परंपरा सबसे प्राचीन है और इसी से ज्ञान की अनेक शाखाएँ विकसित और पल्लवित हुई हैं। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि गुफ़ाओं से निकलकर ही मानव-सभ्यता ने उत्कर्ष पाया है और इसके सर्जन, पोषण और प्रसारण में जनजातियों की प्रमुख भूमिका रही है। मैंने अपनी काव्यकृति 'लमझना' में इन तथ्यों को रेखांकित करने का प्रयास भी किया है। उदाहरण के लिये: ''**कितनी सभ्यताओं की रखी हमने बुनियादें/ गुफ़ा-जीवन से लेकर सिंधु-सभ्यता के वैभव तक/ संस्कृतियों का हमने ही तो किया विस्तार/×××/ आग से लेकर लोहे तक की खोज/ पेड़-पौधों से लेकर जड़ी-बूटियों तक की पहचान/ हमने ही की/ पशुओं को पालतू बनाया/ खेती की/ फ़सलें उगायीं/×××/ कितनी ही विद्याओं के जनक/ कितनी ही कलाओं के प्रवर्तक/ करोड़ों वर्षों के जीवन से अर्जित/ हमारे अनुभवों को हथिया कर/ तुम बन गये ज्ञानी।**''

इसमें कोई संशय नहीं है कि जिन्हें हम आज जनजातीय समुदाय कहकर किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित कर देते हैं, ज्ञान का विस्तार उन्होंने ही किया है। छोटे-छोटे समुदायों से वृहत्तर समाज और फिर एक अखंड भौगोलिक राष्ट्र की बुनियाद रखने में उनकी ही महती भूमिका रही है। आखेट, पशुपालन, जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप कृषि एवं आवास-गृहों के निर्माण की विधियाँ, रोग की पहचान और वनस्पतियों में औषधियों की खोज, आग, लोहा और अन्य धातुओं का संधान, जीवन को सुगम और आनंदमय बनाने के लिये साधन-सुविधाओं और विभिन्न कलाओं का आविष्कार जनजातीय ज्ञान-परंपरा की ही देन है। आज हम इसी ज्ञान-परंपरा की निरंतरता में जनजातीय संस्कृति के वैभव को पृथक से वर्गीकृत करने का प्रयत्न करते हैं।

भारत में अनेक जनजातियाँ हैं। जलवायु और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप अधिकांश की जीवनशैली, खान-पान, सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं में भिन्नताएँ भी हैं। इसलिये समयसीमा में विस्तार से सबकी चर्चा करना संभव नहीं है। विषय को समझने के लिये हम आज यहाँ भारत के एक प्रमुख जनजाति समुदाय गोण्ड की ज्ञान-परंपरा और जीवन-दर्शन की चर्चा करते हैं।

गोंड प्राचीनतम जनजातियों में से एक है। बस्तर में प्रचलित पृथ्वी की उत्पत्ति-कथा के अनुसार ''पहले हर ओर जल ही जल था। उसी जल में तैर रहा था एक तूम्बा। तूम्बे में बैठा था डड्डेबुरका कवासी बायले (स्त्री) के साथ। भीमुलदेव चला रहे थे नाँगर (हल)। जिधर चलता नाँगर, उधर उठ रही थी धरती। पालनार (बस्तर का एक गाँव) में हो रहा था पृथ्वी का जन्म। चलते-चलते नाँगर की नोक टकरायी तूम्बे से। तूम्बे से निकला डड्डेबुरका कवासी बायले के साथ और हो गयी पृथ्वी पर जीवन की शुरुआत और बढ़ता गया कोयतूर का वंशवृक्ष। डड्डेबुरका कवासी कोयतूर, यानी गोण्ड जनजाति का आदिपुरखा।''

इस पारंपरिक कथा के अनुसार जल से पृथ्वी की उत्पत्ति बस्तर के पालनार में हुई थी और उस पर जीवन की शुरुआत करने वाले थे पहले गोण्ड डड्डेबुरका कवासी और उसकी स्त्री।

गोण्ड जनजाति की अन्य प्रचलित मान्यताओं के अनुसार जल से निकली पृथ्वी के कालांतर में दो टुकड़े हुए। भूवैज्ञानिकों के अनुसार उत्तरी भूखंड 'लौरेशिया (अण्डोद्वीप) और दक्षिणी भूखंड 'गोण्डवानाऊ लैंड' (गण्डोद्वीप) कहलाये। एक और भूखंड 'अंगारा लैंड' का भी उल्लेख मिलता है। शंभूसेक (महादेव शंभु) गोण्डवाना लैंड (गण्डोद्वीप) के प्रथम अधिपति थे। इस क्रम में भूवैज्ञानिक भी मानते हैं कि समय के साथ गोण्डवाना लैंड (गण्डोद्वीप) के और विभाजन हुए, जो अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, कोयामुरी, ऑस्ट्रेलिया और अंटार्कटिका महाद्वीप कहलाये। इन्हें पंच महाद्वीप कहा जाता है। गोण्ड विद्वान और अन्य अध्येता मानते हैं कि ईसा पूर्व 5000 वर्ष तक गोण्डवाना लैंड पर शंभूसेक (महादेव) की 88 पीढ़ियों (महादेवों) का आधिपत्य रहा, जो लगभग 10,000 वर्षों की कालावधि मानी गयी है। उन्होंने इस संपूर्ण अवधि को तीन कालखंडों में विभाजित किया है:

(1) शंभू-मूला या मूरा काल।

(2) शंभू-गौरा काल।

(3) शंभू-पार्वती काल।

पुरातत्ववेत्ता, इतिहासकार और नृतत्व-विज्ञानियों ने विश्व की ज्ञात विकसित प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक, जिस सिन्धुघाटी की सभ्यता को द्रविड़ियन सभ्यता माना है, गोण्ड विद्वान उसे शंभू-पार्वती-काल में विकसित गोण्डी-सैन्धव सभ्यता कहते हैं।

मानवशास्त्री गोण्ड जनजाति को ऑस्ट्रोलायड नस्ल तथा द्रविड़ परिवार के अंतर्गत रखते हैं। यह भारत की एक प्रमुख जनजाति है, जिसकी

आबादी देश के मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र ओडिशा, आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, उत्तरप्रदेश, बिहार,झारखंड,पश्चिम बंगाल, गुजरात आदि राज्यों में है।

गोण्ड जनजाति की भाषा गोण्डी है। गोण्ड विद्वान इस भाषा को उनके आराध्य शंभूसेक महादेव के डमरू की ध्वनियों से उत्पन्न मानते हैं। वे इसे गोएन्दाधिवाणी अथवा गोन्दवाणी या गोण्डवाणी कहते हैं।

गोण्डी मूलत: द्रविड़ भाषा-परिवार की भाषा है। गोण्डी लिखने के लिये प्राय: भारत के दक्षिणी राज्यों में प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया जाता है।

ब्राह्मी लिपि का प्रयोग दक्षिण एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया और मध्य-पूर्व एशिया के कुछ भागों में होता है। इसे भारतीय लिपि भी कहा जाता है। इसका प्रयोग इंडो-यूरोपियाई, चीनी-तिब्बती, मंगोलियाई, द्रविड़ीय, ऑस्ट्रो-एशियाई अथवा ऑस्ट्रोनेशियाई, थाई, कोरियाई आदि भाषा-परिवारों में होता आया है। सिन्धु-सभ्यता में ब्राह्मी लिपि का प्रयोग होता था। ईसा पूर्व तीसरी सदी में सम्राट अशोक के राज्यकाल में ब्राह्मी लिपि प्रचलित थी। चोल कालीन तमिल लिपि 'वट्टेलुत्तु' और परवर्ती तमिल लिपि 'भट्टिप्रोलु' की उत्पत्ति और विकास भी ब्राह्मी लिपि से ही मानी जाती हैं। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र सहित अन्य संबंधित राज्यों में देवनागरी अथवा उस राज्य में प्रयुक्त लिपि में गोण्डी लिखी जाती है। हम यह अनुभव कर सकते हैं कि भाषा के आविष्कार के प्रति गोण्ड जनजाति समुदाय की परंपरागत मान्यता क्या रही है? यह भी कि इस मान्यता में भाषा के आविष्कार और विकास के सूत्र भी निहित हैं। पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर कालखंडवार सभ्यता के विकास का मर्म भी उपरोक्त विवरण में मिलता है। किसी भी समुदाय की मौखिक परंपरा पुरखों के अनुभवों से अर्जित ज्ञान की विरासत होती है। इसमें न केवल जातीय इतिहास के सूत्र मिलते हैं, बल्कि उस जनजाति का लोक विज्ञान और जीवन-दर्शन भी निहित होता है।

गोण्ड जनजाति की मौखिक परंपरा में गीत, कथाओं, गाथाओं, लोकोक्तियों (मुहावरों, कहावतों, पहेलियों आदि) का विपुल भंडार है। गीत आनंद और दु:ख के भावों को अभिव्यक्त करने का सबसे सहज और कलात्मक माध्यम है। हम मानते हैं कि मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसने भाषा का आविष्कार और समय के साथ उसका परिष्कार किया है। यही कारण है कि अतीत से लेकर आज तक के मानव-विकास-क्रम को समझने और प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं के सूत्रों को पकड़ने के लिये जनजातियों की मौखिक परंपरा को खँगालते रहना आवश्यक है। मेरा अनुभव रहा है कि उनके पारंपरिक गीतों, कथाओं, लोकोक्तियों, प्रथा-परंपराओं,मान्यताओं आदि से हमें मानव-सभ्यता के विभिन्न चरणों को समझने और शोध की दिशा में आगे बढ़ने का मार्ग मिलता है। उसमें सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक मनुष्य की अनुभव-यात्रा की स्मृतियों का पीढ़ी-दर-पीढ़ी अंकन होता रहा है। इसलिये अनुभव, अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति की भाषा के बदलते स्वरूप के साथ मौखिक संपदा से समय के साक्ष्यों की पड़ताल की जा सकती है। पारंपरिक जनजातीय गीतों में समय के बिंबों का अंकन देखा जा सकता है। अर्थात् उन गीतों के जन्म के समय विद्यमान परिवेश,परिस्थिति और अनुभूति का अंकन उनमें हुआ है।

आदिम मनुष्य को तत्समय मनोरंजन के लिये अधिक साधन उपलब्ध नहीं थे। वह प्रकृति प्रदत्त उपादानों में अपने आनंद के लिये उपकरणों का आविष्कार कर लेता था। प्राचीन गोण्ड जनजाति का ऐसा ही एक अन्वेषण है - डंडार नृत्य। इस नृत्य में गीत गाते हुए डंडे के दो टुकड़ों को वाद्य की तरह बजाया जाता है। यह सामूहिक गीत-नृत्य होता है, जिसमें युवक-युवतियों द्वारा अपनी विभिन्न भावानुभूतियों को पारंपरिक धुन में नृत्य-भंगिमाओं के साथ अभिव्यक्त किया जाता है। यह नृत्य प्रारंभिक मनुष्यों द्वारा समय के साथ सभ्यता को सिरजते हुए एक संगठित समुदाय के रूप में समाज की संरचना के प्रयास का भी एक प्रामाणिक साक्ष्य है।

गोण्ड जनजाति समुदाय भी परंपरागत रूप से अन्य जनजाति समूहों की भाँति प्रकृति-पूजक रहा है। प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और परम आस्था-भाव से प्रेरित होकर उसने अपना देवलोक भी रचा है, जिसमें ग्राम-रक्षक मुठवापेन प्रमुख हैं। भुमका द्वारा मुठवादेव की पूजा के बाद ही अन्य देवी-देवताओं का पूजन और किसी भी मांगलिक कार्य का शुभारंभ किया जाता है।

डंडार उत्सव के लिये मुठवापेन से अनुमति ली जाती है। फिर मुठवा और धरती माता की स्तुति के साथ डंडार नृत्य प्रारंभ होता है:

सोना की थाली,रूई की बाती/पहली आरती धरती माता न सेवा।

डंडार गीतों में जीवन के सभी प्रकार के अनुभव शामिल होते हैं। ये गीत आकार में छोटे और लंबे दोनों प्रकार के होते हैं। कुछ गीत ऐसे भी हैं, जिनमें सृष्टि के आरंभ से लेकर मनुष्य के क्रमिक विकास का वर्णन है। समय और परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करते इन गीतों को गाथा की तरह गाया जाता है, जिनमें तत्कालीन परिस्थितियों और समुदाय के हित में उनसे संघर्ष करने वाले नायको का प्रेरक इतिहास भी होता है। ऐसी गाथाओं के एक अंश के नृत्य-गायन के बाद किसी सयाने द्वारा उसकी अवांतर कथा बतायी जाती है। यह क्रम रात भर चलता है।

डंडार गीतों में संस्कारों की शिक्षा भी है।यद्यपि ये संस्कार समय के साथ आधुनिकता के प्रभाव से अपनी आभा खोते जा रहे हैं। यह गीतांश देखिये,जिसमें पिता अपनी बेटी कमलारानी से कह रहे हैं:

नीवा रोन वरतल वातोल कमलरानी/ राजा-रानी न मियानी/×××/ अनी चड़ू ते येर तड़ा सेवनी कमलारानी/ राजा-रानी न मियानी/×××/ अनी उद्दीले कमली बागें ताड़नी कमलारानी/ राजा-रानी न मियानी/×××/ नीवा रोन वरतल वातोल कमलारानी/ राजा-रानी न मियानी/×××/ उरे वरताल न मिजवानी केवेनी कमलारानी/ राजा-रानी न मियानी/×××/ नीवा रोन वरतल वातोड़ कमलारानी/ राजा-रानी न मियानी।

अर्थात 'तेरे घर मेहमान आये हैं बेटी कमलारानी! जा, कलश से पानी लाकर इनके पैर धुला और कंबल बिछाकर आदर सहित बिठा दे बेटी!' यह गीत हमें अवगत कराता है कि गोण्ड समुदाय में अतिथि-सत्कार की क्या परंपरा रही है!

पारंपरिक गोण्डी गीतों में हम समय के साथ रहन-सहन में आ रहे बदलाव को भी लक्ष्य कर सकते हैं। युवक-युवतियों के सामूहिक नृत्य के साथ गाये जाने वाले 'सारपाटा' (सारगीत) में प्रेमाभिव्यक्ति की लाक्षणिक व्यंजना के साथ आये इस विवरण पर गौर करें:

भैया रो निवा उरमाल उड़ेन लागो/×××/ उरमाल ते क्या फुन्दा लागता रो!/×××/ सुवा बावली ते नींद अले वायो रे/×××/ सरम अले वायो, इगा अले वायो।

पूरे गीत का भावार्थ यह है कि 'भैया, तेरा रुमाल अब उड़ने लगा है। उसमें काढ़े गये सुंदर फुंदने (फूल) किसी का मन हरने लगे हैं। उसकी कुएँ जैसी गहरी सूनी आँखों में नींद तो क्या झपकी तक नहीं आती है।' इस गीत के माध्यम से जनजातीय जीवनशैली में प्रविष्ट रुमाल-संस्कृति के आधार पर सभ्यता के कालक्रम का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

पारंपरिक गीतों में आपदाओं के उल्लेख भी घटनाओं से संबंधित कालखंड के सूत्र उपलब्ध कराते हैं। उदाहरणस्वरूप डिण्डोरी ज़िले में प्रचलित इस गोण्डी 'रीना' गीत को देख जा सकता है:

नदिया के तीर मा बिरहुली के डार रे/ बंदरा हलावै ओखे डारे/×××/ ढीमर घर मा पैदा लैहे धरे मुडेसा जाल/×××/ तलवा के मछरी तलफल होथै/×××/ होइगेस जीव के काल/×××/ बरसत आवै पानी, बहत आवै डूढ़ा/×××/ ओमा बैठय महादेव, ठाकुरदेव/ लइसे चरन अधारे/×××/ बंदरा हलावै ओखे डारे।

रीना-गायक उस समय का वृतांत कुछ इस प्रकार कहता है, 'नदी के किनारे बिरहुल का पेड़ है और बंदर उसकी डगाल को ज़ोर-ज़ोर से हिला रहा है। आज ढीमर के घर लड़का हुआ है,जिसके सिरहाने मछली का जाल रखा गया है। इस ख़बर से तालाब में मछलियाँ छटपटा रही हैं। यह प्राणों के लिये संकटकाल है। भारी वर्षा से नदी में बाढ़ आ गयी है। प्रवाह में एक मोटा लट्ठ बहता आ रहा है, जिस पर महादेव और ठाकुरदेव बैठे हुए हैं। वे ही इस कठिन समय से उबारेंगे।'

वर्षा की विभीषिका का यह वृतांत लोक जीवन के अनुभव के अनूठे बिंब प्रस्तुत करता है।

इस गोण्डी 'झूमर' गीत में इतिहास के सूत्र देखें। इसमें 'कोयली कछार' (कछारगढ़) के जलने का उल्लेख है:

चकमक ढोक-ढोक अगिया निकारे रे!
लेसी डारे या कोयली कछारे रे!

चकमक पत्थर को रगड़-रगड़कर आग उत्पन्न की और उस आग से कोयली कछार जलकर राख हो गया। उल्लेखनीय है कि कोयली कछार को कछारगढ़ के नाम से जाना जाता है और वह गोण्ड जनजाति के लोगों का तीर्थस्थान है। इस गीत से यह संकेत भी मिलता है कि आग यानी अग्नि की खोज भी जाने-अनजाने इस जनजाति ने की है।

गोण्डी ददरिया में दु:ख की अभिव्यक्ति का यह अनूठा अंदाज़ देखिये:

इवला-छिवला,छिवला के पान/कतना-कतना दुख ला सहैय रे परान/भितरी करेजा ला घुन खाथैय रे दोस!

अर्थात पलाश के खुरदुरे फटे पत्ते की तरह ये प्राण कितने दुखों को सहन करे ?भीतर कलेजे पर जो आघात हुआ है, वह घुन की तरह शरीर को खाये जा रहा है। दु:ख की चरम स्थिति और उससे उपजे जीवन-दर्शन का एक अत्यंत प्रभावी बिंब है यह!

एक वह समय भी था,जब गोण्ड किसान पारंपरिक कृषि पद्धति के अनुसार जुताई के लिये हल-बैलों का उपयोग करते थे। प्रस्तुत गोण्डी 'सैला' नृत्यगीत में एक कृषक की श्रमगाथा का अनुभव किया जा सकता है :

तरनारी ओ नाना मोर/ओ तरहर नाना मोर...जवरा-भँवरा चढ़ गयने लोढ़ा पहार/×××/ओंगर जोतो,डोंगर जोतो/जोतो ढाड़ कगार।/मोर जवरा-भँवरा चढ़ गयने लोढ़ा पहार।
धान बोयो,कोदो बोयो/कुटकी ला रिझायो/मोर जवरा-भँवरा चढ़ गयने लोढ़ा पहार।/×××/आरी रूँधो,बारी रूँधो नान बखेड़ा/मोर जवरा-भँवरा चढ़ गयने लोढ़ा पहार।

भावार्थ यह है कि जंगल में बड़े-बड़े पत्थरों,पेड़ों के ठूँठों,झाड़ियों की सफाई करके बीहड़ कगार में अपने जवरा-भँवरा बैलों को हल में जोतकर जुताई की है। उसमें धान और कोदो-कुटकी के बीज बोये हैं। श्रमपूर्वक रुँधाई-बँधाई करके खेत को उपजाऊ बनाया है। अब फ़सल तैयार हो गयी है। यह सब मेरे जवरा-भँवरा बैलों की मदद से ही संभव हो सका है। ऐसा लगता है,जैसे वे लोढ़ा पहाड़ चढ़ गये हों।

गोंडी वाचिक परंपरा की गाथाओं यानी गीति-कथाओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाने में गोंड जनजाति समूह के परधान गायकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस जनजाति के गायक कलाकारों द्वारा तंत्री वाद्य बाना के साथ देवी-देवताओं और राजा-रानी की कथाओं को रात-रात भर गाकर सुनाया जाता है। ऐसी गाथाओं में गोंडीशैली की रामकथा 'रामायनी',पाण्डवों की कथा 'पण्डुवानी' और गोण्डवाना के राजाओं की गाथाओं की श्रृंखला 'गोण्डवानी' प्रमुख हैं। इन गाथाओं के माध्यम से न केवल गोण्ड महानायकों का इतिहास मिलता है,बल्कि महाकाव्य रामायण और महाभारत के पात्रों का जनजातीय जीवन-परिवेश के अनुरूप घटनाक्रम और चरित्रों का व्यवहारगत रूपांतरण मिलता है।

गोण्डवानी की गाथा 'राजा पेमलशाह' के प्रस्तुत गीतांश में गढ़ा के राजा पेमल शाह और उनके वंशजों का उल्लेख इस प्रकार है :

'अब मथे हवैं सब देवता मिलके हो..../मथते-मथते अब राजगोण्ड निकरे है/हाथ में कुर्रा धरैं/बिरमा कहथैं,हाँ,या हवै राजा/कुर्रा के सबन ला एक रस्दा ले हाँकन लै जाही!'

*

'राजगोण्ड भाई राज करन लगिन हैं रे दादा/अब ये ही घराना में रे भैया/राजा पेमल शाह जग जाहिर राजा भये हवै रे भैया/जेखे भैया दूधन शाह,बूडन शाह रे भाई/शंकर शाह,दलपत शाह रे दादा/इन चारों भैया पेमल शाह के पैदा लये हैं रे हो....'

अंत में एक गोण्डी फगुआ-परिहास-गीत,जिसमें आये 'हवलदार', 'पटेल' और 'कुर्सी' जैसे शब्द भी सामाजिक संगठन की संरचना और व्यवस्थाओं के परिवर्द्धन के सूत्र देते हैं। गीतांश देखें :

सुनो, सुनो रे, हवैलदार! ऐ पटेल, काहे रिसायो ?
बेचो तुम्हारी सगी बहिनिया, देव हमारो फगुआ लाल!
कुर्सी पर बैठने कू भल्लो बिराजे!देव हमारो फगुआ लाल!

होली के अवसर पर मोरपंखों के गुच्छों (झाड़ू) से युवकों को मारती हुई युवतियाँ फगुआ माँगती हुई कहती हैं कि 'ऐ हवलदार! ऐ पटेल,सुनो! तुम रूठे क्यों हो ?भले ही अपनी सगी बहन को बेचकर दो,मगर हमारा नेग तो तुम्हें देना ही पड़ेगा! तुम्हें कुर्सी में बैठना तो अच्छा लगता है,परंतु फगुआ देने में रोना आता है ?'

जनजातीय मौखिक परंपरा अत्यंत समृद्ध और असीम है। यह अर्जित ज्ञान की वह विरासत है,जो आधुनिक ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करती है।

जनजातियों के जीवन-दर्शन को समझने के लिये भी उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं के मार्फ़त मौखिक परंपरा की शरण में जाना पड़ता है।

आमतौर पर श्रृंगार के लिये प्रयुक्त 'गोदना' के प्रति गोण्ड समुदाय का जीवन-दर्शन देखिये: **'दान रुपिया-पैसा सब छूट जत्थे/मरत समय गुदना साथ जात है/यही चिह्न जाथै मोर संग मा।'** मान्यता है कि मृत्यु के बाद शरीर से सारे आभूषण उतार लिये जाते हैं, केवल गोदना का चिह्न साथ जाता है। वे इसे आत्मा का श्रृंगार मानते हैं। बैगा जनजाति के लोग तो यह भी मानते हैं कि अगर किसी के शरीर पर गोदना न हो तो **'मरत समय साबड़ (यानी सब्बल) से गोदही।'** गोण्ड जनजाति की मान्यता के अनुसार जब जीव चोला छोड़कर ईश्वर के पास जाता है तो उससे पूछा जाता है- 'कहिन लयव, कहिन दयव ?' यानी,क्या लिया और क्या दिया ? अगर गोदना है तो जीव बतायेगा - **'चीह्ना धर के लाय हव।'** इस चीह्ना से गुजारा हो जायेगा। इसे ही भँजा-भँजाकर खाऊँगा। यही मान्यता भारिया जनजाति की भी है। गोण्ड समुदाय के लोग देह पर गाछ (पेड़),मछिया और कलश के चिह्न इसलिये गुदवाते हैं कि मृत्यु के बाद जब जीवात्मा ईश्वर के लोक जायेगी तो यात्रा की थकान मिटाने के लिये पेड़ की छाया में मछिया पर बैठकर विश्राम करेगी और कलश का पानी पीकर प्यास बुझायेगी। कोल जनजाति के लोग मानते हैं कि जिसका नाम गुदवा लें,वह अगले जन्म में भी साथी के रूप मे मिलेगा। इसी विश्वास के साथ माताएँ बच्चों को गोद में बिठाकर गोदना गुदवाती हैं कि पुनर्जन्म में वे दोबारा संतान के रूप में प्राप्त हों। गीत है : **'संग-संग गोदना गोदाव मोर गुइंया/गोदना है अंगले जनमकेर साथी।'**

अब सोचना यह है कि इस चराचर जगत् को देखने और अनुभव करने की जनजातीय पारंपरिक दृष्टि क्या है? भारत का सर्वाधिक आबादी वाला गोण्ड पुनेम यानी जनजाति समूह यह मानता है कि **मुठवा पहांदी पारी कुपार लिंगो यानी शिव ने इस पंचखंड धरती की रचना की है और वही सृष्टि यानी चराचर जगत् का स्वामी है।** वेदों में ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियों की उपासना है। जनजातीय परंपरा में भी पार्थिव, जैव और वानस्पतिक तत्त्वों में ईश्वरीय शक्तियों की उपस्थिति मानी जाती है। इसी मान्यता ने टोटेमवाद यानी गोत्रचिह्नों की पद्धति को जन्म दिया है।

गोण्ड जनजाति समूह के 750 गोत्र माने गये हैं। यह समुदाय मानता है कि गोत्र-व्यवस्था आदि पुरखा यानी मुठवा पहांदी पारी कुपार लिंगो द्वारा सृष्टि के जीव-जगत् की सुरक्षा के लिये की गयी है। गोत्र-व्यवस्था पुर्वा, सुर्वा, नीलू, भुई, सुक्कुम, नलेज, आरू, मेरू, भस्सूम, पुयार, मुठ, सिल्पा आदि बारह ग्रहों के आधार पर की गयी है। बारह ग्रह यानी बारह देव! और एक-एक देव के निश्चित गोत्र। जैसे-एक से सात देव तक सौ-सौ, यानी सात सौ और आठ से बारह देव तक दस-दस,यानी पचास गोत्र। इस प्रकार बारह देवों के कुल सात सौ पचास गोत्र।

गोण्ड यानी कोया अथवा कोयतूर के मुख्य चार वंश माने गये हैं - सोमवंश,सूर्यवंश,नागवंश और रावणवंश। सूर्य,चन्द्रमा, नाग और रावण इनके प्रमुख आराध्य हैं। सूर्य को दिवागोंगो कहा जाता है। गोंगो यानी देवता,जैसे-ताराल गोंगो, साराल गोंगो, डाराल गोंगो, जुनाल गोंगो, मुलाल गोंगो, सुकाल गोंगो, सिरमाल गोंगो, सिरपाल गोंगो, सिरकाल गोंगो, सिरलाल गोंगो आदि। सूर्य दिवा के देवता हैं। ऊर्जा और प्रकाश के स्रोत। चन्द्रमा पड़ापेन शिव के मस्तक की शोभा हैं। नाग शेष हैं,पृथ्वी के धारक,पड़ापेन के कंठाभरण। रावण द्रविड़कुल शिरोमणि। कई क्षेत्रों में फाल्गुन पूर्णिमा को खाण्डेरा रावणा की पूजा की जाती है। बस्तर में गिद्ध को हल्बी में रावणा कहा जाता है। रावण का पुत्र मेघनाद,जिसकी पूजा गोण्ड समुदाय द्वारा की जाती है। पारंपरिक गीतों में उसके शौर्य और मारे जाने का वर्णन मिलता है। छिन्दवाड़ा ज़िले के उमरेठ में चैत्र मास के कृष्णपक्ष की प्रथमा को मेघनाद मेला भरता है।

मुठवा पहांदी पारी कुपार लिंगो ने प्रत्येक गोत्र के लिये एक गोत्रचिह्न सहित तीन गोत्रदेव निर्धारित किये हैं,जो एक पशु,एक पक्षी और एक वनस्पति है। इस प्रकार सात सौ पचास गोत्रों द्वारा कुल दो हज़ार दो सौ पचास पशु,पक्षी और वनस्पतियों की गोत्रदेव के रूप में पूजा और उनकी सुरक्षा की जाती है। गोत्रचिह्न के रूप में अंगीकृत पशु-पक्षी आदि की मृत्यु पर शोक मनाने की भी प्रथा है।

कोया पुनेम मुठवा रायलिंगो भी कोयतूर समुदाय का सामाजिक नियंता माना जाता है। मुठवा रायलिंगो को रावेनपेन्याल के रूप में भी पूजा जाता है।

जैसा कि पहले कहा है गोण्ड यानी कोयतूर जनजाति **पड़ापेन**, यानी बड़ादेव, यानी शंभू (स्वयंभू) को सृष्टिकर्ता मानते हैं। मान्यता के अनुसार साज अर्थात् साजावृक्ष में **पड़ापेन** का वास है। इसलिये यह वृक्ष इस जनजाति समूह की आस्था का केन्द्र है। कोयतूर समुदाय द्वारा शंभू महादेव के साथ **गवरा दाई** अर्थात् गौरी माता की भी पूजा की जाती है। इस जनजाति की मान्यता के अनुसार गवरा दाई सृष्टि की स्वामिनी है, इसलिये कोयतूर की अधिष्ठात्री भी।

गोण्ड जनजाति समूह में **पड़ापेन** यानी शिव को **बूढ़ालपेन** भी कहते हैं। यह महादेव शिव के आदिदेव या आदि पुरखा अर्थात् आदिजन यानी आदिवासीजन के प्रथम यानी मूर्धन्य देवता होने का प्रमाण है। बस्तर के भोपालपटनम् क्षेत्र में भी **येरनेल्ला मुसलोडू** वहाँ के कोया, गोट्टे और दोरला समुदायों के सबसे बड़े देवता हैं। उनका स्थान संड्रूपल्ली है।

मुसलोडू द्रविड़ियन शब्द है, जो स्थानीय गोण्डी और तेलुगू में **बूढ़े** के अर्थ में समान रूप से प्रयुक्त होता है। इससे यह पता चलता है कि सम्पूर्ण गोण्ड समूह में महादेव शिव को विभिन्न रूपों या नामों से जाना और पूजा जाता है।

गोण्ड जनजाति समूह की मान्यता के अनुसार **पड़ापेन** के छह भिन्न स्वरूप हैं,जो परसापेन, मटियापेन, गागरापेन, पालोपेन, सल्लेपेन और चंबरपेन के नाम से पूजे जाते हैं। यह मान्यता अवतारवाद तो नहीं, परंतु अद्वैतवाद की ओर ज़रूर संकेत करती है। गोण्ड स्त्रियाँ शिव अर्थात पड़ापेन के प्रति आस्था व्यक्त करने के लिये प्रतीकस्वरूप मस्तक पर अर्द्धचन्द्र का चिह्न गुदवाती हैं। इस चिह्न को अत्यंत शुभ माना जाता है।

गोण्ड जनजाति समूह में पंचतत्त्व की अवधारणा है। इसलिये जन्म-संस्कार में पंचबंधान प्रमुख है। शिशु-जन्म के पाँचवें दिन **सयटी** मनायी जाती है। 'सय' यानी पाँच और 'टी' यानी दिन। पंचतत्त्व की काया को पाँच सगा मिलकर कमरदोर यानी कमर में पाँच धागे बाँधते हैं।ये धागे पंचतत्त्व के प्रतीक हैं। मृत्यु के बाद यह कमरदोर पुन: पाँच सगाओं द्वारा है तोड़ा जाता है।

कोया मान्यता के अनुसार मनुष्य के शरीर का निर्माण येर (जल), तोरी (मिट्टी), अद्दी (अग्नि), वरी (हवा) और पोकली (आकाश) आदि पंचतत्त्वों से परसापेन ने किया है। इसलिये इस गण्डजीव की मृत्यु के पश्चात इसके शरीर को धरती में ही दफ़नाया जाना चाहिए। इस क्रिया को गोण्ड '**जिवातुन तोरी सियाना**' कहते हैं। गड्ढे में मृतक का सिर दक्षिण दिशा में और पैर उत्तर की ओर रखे जाते हैं। मृत्यु के पश्चात प्रत्येक को देवकुल में मिलाने का संस्कार किया जाता है। एक कटोरे में धान के कुछ बीज डालकर हिलाया जाता है और उनकी नोक परस्पर मिल जाने पर यह मान लिया जाता है कि मृतक की देवमिलौनी हो गयी है। सारे पितर देव हैं, इसलिये शुभकार्यों और विभिन्न अनुष्ठानों में उनका आह्वान किया जाता है।कोयतूर पुनर्जन्म में भी विश्वास रखते हैं। यह कितना अद्भुत है कि जीवन और जगत् से गहन संलग्नता, तल्लीनता और रागात्मकता के बावजूद गोण्ड जनजाति समूह के लोग मृत्यु की आनुष्ठानिक क्रियाओं को उत्सव की भाँति संपन्न करते है। सामूहिक भोज के पश्चात पारंपरिक वाद्यों के उल्लासमय संगीत में अपने नर्तन से मृतक की आत्मा को आनंदित करने का ही तो प्रयास करते हैं! यह आचरण जीवन-मृत्यु के रहस्य को समझकर उन्हें निरपेक्ष भाव से देखने की तत्त्वदृष्टि से भिन्न तो नहीं! यद्यपि कुछ विद्वान कोयतूर शब्द की व्युत्पत्ति पूर्व में गुफ़ावासी होने के कारण अंग्रेज़ी के **केव** (cave) शब्द से मानते हैं, लेकिन कोयतूर समुदाय के लोग इस शब्द को कोया यानी महुआ शब्द से जोड़कर बताते हैं। उल्लेखनीय है कि **कोयतूर** या गोण्ड जनजाति के समाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन में महुए का अत्यधिक महत्व है। **महुआ** फूल को गोण्डी में **कोया** पुंगार कहा जाता है। छत्तीसगढ़ के दक्षिण-पश्चिम बस्तर, विशेष रूप से बीजापुर-भोपालपटनम् क्षेत्र में निवासरत गोण्ड जनजाति समूह में कोया,गोट्टे,दोरला आदि सम्मिलित हैं। इसलिये **कोया** (महुआ) शब्द से **कोयतूर** शब्द का प्रचलन अधिक सही और तर्कसंगत लगता है। गोण्ड जनजाति समूह पृथ्वी की उत्पत्ति जल से ही मानता है। एक लम्बी कथा के अनुसार महादेव के आदेश पर कौए ने धरती की खोज करते हुए जम्मोद्वीप की जलहरपुरी जाकर ककरामल (केकड़ा) से प्रार्थना की ककरामल ने किचवामल (केंचुआ) के पेट से मिट्टी निकालकर कौए को दी। महादेव पड़ापेन ने वह मिट्टी जल पर छड़क दी और धरती बन गयी। बची हुई मिट्टी से दो पुतले बनाये,जो कोयतूर समुदाय के आदि पुरखे हैं- पहली स्त्री और पहला पुरुष।

गोण्ड जनजाति समूह के लोग संसार में उपस्थित प्रत्येक रचना को सृष्टिकर्त्ता पड़ापेन का अंश मानते हैं। धरती, वनस्पतियाँ, जलस्रोत, पर्वत, सूर्य,चन्द्र,नक्षत्र सहित समस्त जीवजगत् उनके आराध्य हैं। नाग से लेकर बाघ तक सब देवता हैं और आस्था के केन्द्र भी। पर्व,त्योहार और अनुष्ठानों के माध्यम से ये उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। हर नयी फ़सल को देवता की कृपा मानकर उन्हें अर्पित करते हैं।

गोण्ड जनजाति के लोग सहज होते हैं और जीवन को उसी भाव से जीते भी हैं। बहुत संचय की प्रवृत्ति उनमें नहीं है। पदार्थ के प्रति मोह भी उनमें नहीं देखा जाता। वे वर्तमान को जीने में विश्वास करते हैं,भविष्य के प्रति चिंता वे कम ही करते हैं। अपने किसी कृत्य पर पश्चाताप का भाव भी नहीं देखा जाता। तत्काल निर्णय लेना और परिणाम के लिये तैयार रहना उनका सहज स्वभाव है।

हम यह मान सकते हैं कि गोण्ड जनजाति समूह की तत्त्वदृष्टि और जीवनदृष्टि इस प्रकार से एकाकार हैं कि उन्हें प्राय: अलग नहीं किया जा सकता है। इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा और जीवन-दर्शन के स्रोत जनजातीय ज्ञान-परंपरा और जीवन-दर्शन ही रहे हैं।

लेखक- वरिष्ठ साहित्यकार एवं जनजातीय अध्येता हैं।
ए-1,लोटस,स्प्रिंग वैली, कटारा हिल्स, बाग़मुग़ालिया,
भोपाल - 462043 (म.प्र.)
मो. 8319163206

अनुरोध

सभी लेखकों एवं पुस्तक समीक्षकों से निवेदन है कि कला समय के लिए भेजे जाने वाले आलेख अधिकतम 3 पृष्ठ तथा पुस्तक समीक्षा अधिकतम 2 पृष्ठ की ही मान्य होगी।

-सम्पादक

बंजारा समुदाय की विविधरंगी रूपंकर कलाएँ, शिल्प और वस्त्राभूषण

प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा

भारत की संस्कृति सही अर्थों में लोक, जनजातीय, विमुक्त, घुमंतू और अर्ध घुमन्तू समुदाय की संस्कृति है, जो सहस्राब्दियों से इन सबकी सक्रिय भागीदारी और जैविक आपसदारी से निरन्तर संवर्धित होती आ रही है। घुमंतू व्यापारी और चरवाहा जनजातियों के लोक समुदाय ने विविध क्षेत्रों की संस्कृति और सभ्यता के मध्य सेतु बनाने में अविस्मरणीय योगदान दिया है। घुमंतू या खानाबदोश समुदाय के लोग एक समूह के रूप में जाने जाते हैं, जो अपनी आजीविका के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते हैं। इनमें नमक व्यापारी, अनाज या मसाला व्यापारी, पशुपालक, भाग्य बताने वाले, जादूगर, आयुर्वेदिक चिकित्सक, बाजीगर, कलाबाज, कहानी सुनाने वाले, सपेरे, पशु चिकित्सक, गुदना बनाने वाले, घट्टी बनाने वाले या टोकरी बनाने वाले सम्मिलित हैं। बंजारा लोग इन सभी के बीच महत्त्वपूर्ण खानाबदोश व्यापारी के रूप में जाने जाते हैं। उनका कारवाँ टांडा या तांडा कहलाता है।

बंजारा समुदाय को गोर, लमान या लमाण, लमाणी, लम्बाड़ी, लंबाड़ा, लबान, लबाना, नाइक आदि नामों से भी जाना जाता है। यह ऐतिहासिक रूप से खानाबदोश व्यापारिक समुदाय है, जिसकी उत्पत्ति राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में मानी जाती है। अब बंजारा जन सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिमी, पश्चिमी और दक्षिणी भारत में निवासरत हैं। विभिन्न राज्यों में बंजारों को अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। बंजारे आमतौर पर खुद को गोर कहते हैं, इससे संबंधित गोर माटी या गोरमाटी शब्द का भी उपयोग किया जाता है, जिसका तात्पर्य है अपने लोग। कुछ विद्वान मानते हैं कि चौदहवीं शताब्दी ई. के आसपास से यह समुदाय बंजारा के रूप में जाना जाने लगा और लेकिन इससे पहले इनका सम्बन्ध लमाण या लमान के साथ जोड़ा जाता है, जिनका लगभग 3000 साल का इतिहास है।

अखिल भारतीय बंजारा सेवा संघ द्वारा 1968 में किए गए एक सर्वेक्षण में बंजारा के 27 समानार्थक शब्द और 17 उप-समूह दर्ज किए गए। रिकॉर्ड किए गए समूहों में धारिया, चारण, मथुरिया, कोल्हाटी, मुकेरी, कैंजर, मुल्तानी आदि प्रमुख हैं। एक दौर में नमक एक प्रमुख उत्पाद था, जिसे उन्होंने देश के दूरदराज के इलाकों तक पहुँचाया।

बंजारों के सौंदर्यबोध और मनोभावों का मूर्तन उनकी विविध कलाभिव्यक्तियों और मौखिक साहित्य में हुआ है। सौंदर्य या लालित्य के आश्रय से व्यक्त होने वाली कलाएँ ललित कला कहलाती हैं अर्थात् वह कला जिसके अभिव्यंजन में सुकुमारता और सौंदर्य की अपेक्षा हो और जिसकी सृष्टि मुख्यत: मनोविनोद के लिए हो, जैसे विभिन्न प्रकार की चित्रकलाएँ, गुदना, वस्त्राभूषण आदि। बंजारा समुदाय की विविध कलाभिव्यक्तियों में लालित्य तत्त्व के दर्शन सहजता से हो जाते हैं। वर्तमान में बंजारा हस्तकला को देश के विभिन्न प्रान्तों में पसंद करने के साथ वैश्विक पहचान मिलना शुरु हो गई है।

लंबानियों में रंगोली की कला अनुपम है। यह आमतौर पर ज्वार पाउडर, हल्दी पाउडर, गुलाल का उपयोग करके पुरुषों द्वारा भगवान या देवी की वेदी के सामने खींचा जाता है। अलग-अलग देवी-देवताओं के सामने अलग-अलग डिजाइन तैयार किए जाते हैं। मरियम्मा देवी की विशिष्ट रंगोली ज्वार के आटे, हल्दी पाउडर, कुंकुम और गुलाल का उपयोग करके बनाई जाती है।

लम्बानी महिलाएं अलग-अलग डिजाइन के गोदने बनवाना पसंद करती हैं। शरीर के विभिन्न अंगों को गुदनों के माध्यम से चित्रित करने के पीछे बंजारा स्त्रियों का अलंकरण के प्रति आकर्षण का भाव प्रकट होता है। बंजारा स्त्री और कन्याएं अपने दोनों हाथों पर, मस्तक पर, नाक के दाएं ओर गुदना आकृतियां बनवाती हैं। इन आकृतियों में चंद्र, अर्धचंद्र, फूल तथा मांगलिक प्रतीक होते हैं, जो इनके सौंदर्य बोध और जातीय स्मृतियों के परिचायक हैं।

बंजारा जनजाति की कंघी कला अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। गवारिया बंजारा समाज का पुराना परम्परागत व्यवसाय लकड़ी

की कंघी बनाना रहा है, जो आज भी अनेक क्षेत्रों में प्रचलित है। राजस्थान के बंजारा समाज के श्री भंवररामजी कूर्रा गवारिया कृष्णगंज, सिरोही अपनी हाथों की कला से लकड़ी की बहुत ही सुन्दर कंघी बनाते हैं। हाथ के कौशल से तैयार किए जाने वाले इस रचनात्मक उत्पाद के लिए किसी आधुनिक मशीनरी या उपकरणों की मदद नहीं ली जाती। मध्यप्रदेश में बसे बंजारा समुदाय के लोग भी कलात्मक कंघियाँ बनाने के लिए जाने जाते हैं। उज्जैन, रतलाम और नीमच के बंजारे इस कला में निष्णात हैं। उज्जैन में दानी गेट के पास कांगी मोहल्ला में रहने वाले लकड़ी की कंघी बनाने वाले थेडालाल बंजारा एक महत्त्वपूर्ण कलाकार हैं। वे अपनी तरह के अंतिम कलाकार हैं। कलाकार का कहना है कि उनके काम को प्लास्टिक चुनौती दे रहा है, जो लोकप्रिय हो गया है। लेकिन प्लास्टिक की तुलना में, लकड़ी के कंघे कहीं बेहतर होते हैं। वर्तमान में प्राय: हस्तशिल्प मेलों में ही उनकी कला कौशल का परिचय मिलता है।

छत्तीसगढ़ राज्य में बसे बंजारे बांस की बनी छोटी टोकरी, जिसे गप्पा कहते हैं, पर कपड़ा चढ़ाकर सिल देते हैं, जो उनकी सौंदर्य दृष्टि का परिचय देती है। उस कपड़े पर कौड़ियां और शीशे जड़कर सज्जा की जाती है। बांस की टोकरी पारधी समुदाय के बांस शिल्पी बनाते हैं, जिसे बंजारा लोग खरीदकर उस पर सजावट का कार्य करते हैं। यह गप्पा घसिन माता का शृंगार है। गप्पाघसिन माता को गोंडिन देवी, पेंड्राऔंडनी, दुर्पत्ती माई, झिटकू – मिटकि आदि भी कहते हैं। इसी तरह छत्तीसगढ़ में बंजारों द्वारा निर्मित की जाने वाली टोपी बहु लोकप्रिय है। यह देवी – देवताओं द्वारा सर पर पहना जाने वाला सुंदर वस्त्र है। यह अनेक रंग के कपड़ों से बनाया जाता है। प्रत्येक देवी के लिए एक निश्चित रंग की टोपी होती है। प्रत्येक देवी–गुढ़ी में अन्य आनुष्ठानिक वस्तुओं के साथ देवी के वस्त्र शृंगार भी बांस की एक बड़ी ढक्कनदार टोकरी में रखे रहते हैं। इन्हें सिरहा पर देवी चढ़ने पर निकाला जाता है और सिरहा पर आई देवी को पहनाया जाता है। यह वस्त्र या तो कोई व्यक्ति मनौती पूर्ण होने पर गुढ़ी में चढ़ाता है अथवा गांव के लोगों के चंदे से जमा हुए पैसे से खरीदे जाते हैं।

बंजारा जन अपनी विशिष्ट वेशभूषा और आभूषणों के लिए पहचाने जाते हैं। उनकी वेशभूषा विशेष प्रकार की होती है। किसी अन्य समुदाय में शायद ही इतने कलात्मक वस्त्र और आभूषणों का प्रयोग होता होगा। बंजारा स्त्रियाँ रंगबिरंगे वस्त्र स्वयं तैयार कर लेती हैं। बंजारा कला राजस्थान के अन्य समुदायों, विशेष रूप से लेपो कला से मेल खाती है। लम्बानी महिलाएं कढ़ाई के माध्यम से अपने कपड़े तैयार करने में माहिर हैं। लेपो कढ़ाई के काम से बनता है। महिलाएँ कढ़ाई में विशेषज्ञ होती हैं, जिसमें कपड़ों पर दर्पण के टुकड़े, सजावटी मोतियों और सिक्कों की सिलाई शामिल होती है। दर्पण, गोले और जटिल कढ़ाई से अलंकृत, बंजारों का कढ़ाई का काम आश्चर्यजनक रूप से आधुनिक सौंदर्य को प्रदर्शित करता है। कढ़ाई कौशल के साथ मालिक को नुकसान से बचाने और शुभ शक्तियों को प्राप्त करने के लिए विकसित की गई बंजारा तकनीक भारत में अद्वितीय है और इसकी साधना करने वाली महिलाओं की सामर्थ्य का प्रमाण है।

बंजारों में रंग बिरंगी और विविध कशीदाकारी संपन्न वस्त्रों का विधान सौंदर्य में अभिवृद्धि के लिए होता है। बंजारा स्त्रियों के वस्त्र कलात्मक सौंदर्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। बंजारा समुदाय अपनी स्त्रियों के रंग बिरंगे वस्त्रों और चांदी के बने भारी –भरकम गहनों के लिए जाना जाता है। बंजारा स्त्रियां चमकीले लाल, नीले, पीले कपड़ों पर मोटे सूती धागे से की गयी कशीदाकारी और शीशों के जड़ाव से सजे वस्त्र पहनना पसंद करतीं हैं। राजस्थान और विशेषत: आंध्रप्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के बंजारों में कशीदा और एप्लिक के काम में शीशों के जड़ाव से वस्त्र सज्जा की एक समृद्ध परंपरा है। वे केवल अपने पहनने के वस्त्र ही नहीं अपने पशुओं को सजाने, घरेलू थैले, थैलियों एवं कपड़े से बनी अन्य उपयोगी वस्तुओं पर भी एप्लिक एवं कशीदाकारी करतीं हैं। प्रत्येक घर में फुर्सत के समय बंजारा स्त्रियाँ अपने वस्त्रों को घर में ही कलात्मक ढंग से कशीदाकारी करते हुए तैयार करती हैं। इनमें कांच के टुकड़ों, छोटी कौड़ियों और मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियाँ काँचली को विशेष प्रकार से सजाती हैं। काँचली चोली की तरह दिखती है। काँचली का मुख्य रूप से तीन भागों विभाजन कर सकते हैं – खविया, पाटा या थानथान्या और पेंटी। खविया दोनों भुजाओं पर तीन रंगों के कपड़े को (काला, पीला, लाल) लेकर सीला जाता है। भुजाओं पर काँच तथा कौड़ी जोड़कर भी सीते हैं। पाटा या थानथान्या को वक्षस्थल पर पहना जाता है। कपडे को अन्दर से नरम तथा बाहर से चमकी लगाकर यह वस्त्र सीला जाता है। इस पर भी काँच, कौड़ी, कँदा जोड़कर सीलते हैं। काँचली के अंत में पेटी जोडी जाती है। यह पेट और पेडू के बीच रहती हैं। पेटी पर भी फूंदा, काँच कौड़ी जोड़कर सीला जाता है। पेटी के अन्दर पैसे छुपाने के लिए खीसा भी बना लेते हैं। फेटिया का वजन पाँच किलो तक का होता है। बंजारा बुजुर्ग कहते हैं कि फेटिया बीस मीटर वस्त्र से बनाई जाती है।

बंजारा जन प्रत्येक रूप से कमर पर बांधने के लिए लेपो बनाते हैं। बंजारिन अपनी कमर के हिसाब से नाप लेकर लेपो तैयार करती हैं। लेपो को एकदम कमर पट्टे की तरह मजबूती से तैयार करते हैं। इस पर भी काँच, कौड़ी पारा आदि जोड़कर इसे आकर्षक बनाते हैं। लहंगा या लेंग

(घाघरा) का विस्तार कितना होना चाहिए, इसके हिसाब से घेरा बनाया जाता है। घेरे को लेपो से जोड़ दिया जाता है। घेरे को भी रंग बिरंगी डोरी से सीला जाता है। लहंगा खराब न हो, इसलिए इसमें विशेष प्रकार की बड़ी पट्टी लगाई जाती है और वह धोने पर भी खराब नहीं होती है। लामण पर भी काँच, कौड़ी को जोड़ते हैं। बंजारा स्त्रियों को सबसे ज्यादा ओढ़नी ही सुंदर बनाती है। ओढ़नी तीन मीटर तक रहती है। ओढ़नी को बंजारिन विशेष प्रकार से सजाती हैं। ओढ़नी सर से थोड़ा नीचे करने पर उसे घूंघटो (घूंघट) कहते है। ओढ़नी पर भी लाँच, पतड़ी, फूंदा, पारी आदि से अलंकरण करते हैं।

संदूर लम्बानी कढ़ाई कपड़े की प्रसिद्ध कढ़ाई है, जिसका प्रमुख केंद्र कर्नाटक का संदुरु, बेल्लारी जिला है और इसे जीआई टैग भी प्राप्त हुआ है। लम्बाड़ा कढ़ाई कई अन्य नामों से भी जानी जाती है, लम्बाड़ी कढ़ाई, लम्बानी, संदूर लम्बानी कढ़ाई, बंजारा कढ़ाई, लेपो आदि। लम्बाड़ा कढ़ाई में पैचवर्क, एप्लिक, बीडवर्क और कढ़ाई एक साथ होती है। लम्बाड़ा कढ़ाई में टांके और तालियों के संयोजन के साथ-साथ मिरर वर्क और अन्य अलंकरणों का प्रयोग किया जाता है। बंजारा महिलाएँ अपने रंगीन परिधानों, जैसे फेटिया और कांचली या ब्लाउज को सजाने के लिए सिक्कों, गोले, बटन, कौड़ी और दर्पण के छोटे टुकड़ों का उपयोग करती हैं। मोटिफ्स मुख्य रूप से ज्यामितीय होते हैं, जिनमें ग्रिड जैसे पैटर्न होते हैं। लम्बाड़ा कढ़ाई के काम से सजाए गए वस्त्रों की विदेशों में भी मांग है। लंबाणी परिधानों के अलावा, इस कला को विभिन्न प्रकार के उत्पादों, जैसे कुशन कवर, बेडकवर, वॉल हैंगिंग, वस्त्र और सामान जैसे बैग, हैंडबैग, कमर बेल्ट आदि में भी प्रयुक्त किया जाता है। कढ़ाई के अत्यंत कुशल और सम्मोहक कार्य लिए हुए बंजारा कला में विशिष्ट दर्पण कार्य परिलक्षित होता है। बिल्कुल आश्चर्यजनक किस्में और वॉल हैंगिंग डिज़ाइन प्रकृति से प्रेरित होती हैं, जिसमें सुंदर पैटर्न समाहित किए जाते हैं। बंजारा कला कार्य से समृद्ध तेलंगाना एवं अन्य राज्य विशेष रूप से इस खानाबदोश समुदाय के घर हैं, जिन्होंने कला और शिल्प के क्षेत्र में अपनी अलग छाप छोड़ी है। दर्पण का काम लिए हुए बैग की आश्चर्यजनक किस्मों में भी उनकी कलाभिरुचि परिलक्षित होती है। वे बेहद सुंदर और आकर्षक पैटर्न के साथ उन्हें बनाते हैं।

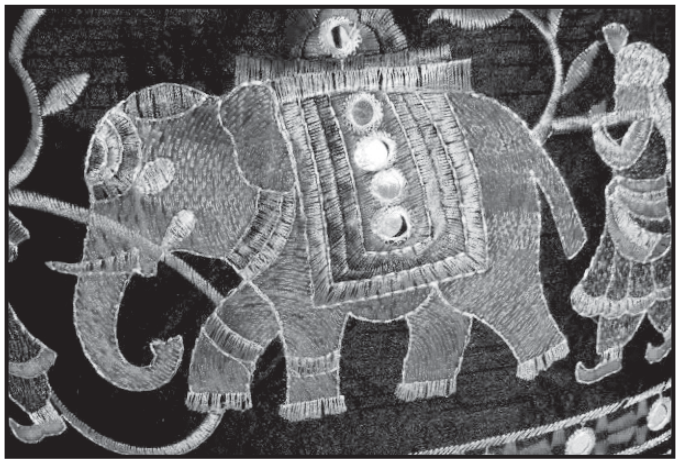

लम्बानी महिलाएं अपने गले, नाक, आंख, बाल, हाथ, अंगुलियों और पैरों के चारों ओर विभिन्न धातुओं से बने आभूषण पहनती हैं। बंजारा समुदाय की पारंपरिक कला सिक्कों से आभूषण बनाना भी है। चांदी के सिक्कों से बने हार को वांकिया के नाम से जाना जाता है जो पच्चीस पैसे के सिक्कों और छोटी घंटियों से बनाया जाता है। चांदी की चेन के साथ इन आभूषणों की सुंदरता और भी बढ़ जाती है। लम्बानी महिलाओं के पैर के प्रमुख गहने हैं, कस्से (कांस्य के गोल आभूषण), चेन (चांदी से बने), वीती (पैर की उंगली के लिए चांदी की अंगूठी), फूलिया (पैर की चांदी की मछली की तरह के छल्ले) आदि। परंपरागत रूप से लम्बानी महिला अपने हाथों पर हाथीदांत की चूड़ियाँ पहनती है। आजकल हाथीदांत उपलब्ध नहीं है, इसलिए प्लास्टिक की चूड़ियाँ आम हैं। कई समुदायों की स्त्रियाँ अधिकांश आभूषणों को विशेष अवसरों पर धारण करती हैं, किन्तु बंजारिन अपने अलंकारों को देह से कभी अलग ही करना नहीं चाहतीं। इनके अधिकांश आभूषणों में कलात्मकता के साथ सौंदर्यबोध के दर्शन होते हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं,

आटी, घूघरी टोपली, बोटला, भुरिया, बलिया, हांसलो, कोपरिया, कावली, फेटिया, ओणी (ओढ़नी) वीटी फूला, अंगूटला, गरतणी, कल्ला आदि।

आटी को चाँदी से बनाया जाता है। ओढ़नी आटी के ऊपर से ओढ़ी जाती है। आटी सिर के पीछे बाल में खोंसकर रखते हैं। इससे ओढ़नी का सौंदर्य बढ़ता है। घूघरी टोपली एक प्रमुख आभूषण है। घूघरी का अर्थ हैं घुंघरू और टोपली का अर्थ है टोपी। टोपी के आकर में रखकर नीचे के भाग में छोटे-छोटे घुंघरू होते हैं। माथे के दोनों ओर कानों के बीच यह लटकती है। घूघरी टोपली को बालों की लटों में अटकाते हैं। पूर्व विवाह व्यवस्था में ससुराल वाले विशेष करके इसे ही लाते थे। आजकल बंजारा समाज में इसका अधिक प्रचलन दिखाई नहीं देता है। इसको सौभाग्य का सिन्दूर माना जाता है। भूरिया छोटी नथ जैसी होती है। लेकिन नथ से इसका आकार बड़ा होता है। सोने से निर्मित भूरिया बंजारिन के नाक की शोभा बढ़ाती है।

वीटी फूला अंगुलियों पर धारण किया जाता है। वीटी अर्थात् अंगूठी, फूला का अर्थ है फूल। बंजारिन अपनी अंगूठी को भी अधिक महत्व देती हैं। बंजारिन साधारण अंगूठी नहीं पहनती हैं। उनकी अंगूठी विशेष प्रकार से बनाई जाती है, जो उंगली को सुशोभित करती है। अंगूठी को चाँदी से बनाया जाता है। अंगूठी को फूल के आकार में बनाने के कारण उसे वीटी फूला कहते हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार हर विवाहित स्त्रियाँ अपने स्वामी का प्रतीक मानकर पैर की अंगुली में बिछिया पहनती हैं। बंजारा स्त्रियाँ पैर के अंगुलियों के साथ अंगूठे में भी अंगूठी पहनती हैं। वे अंगूठे में पहनने वाली अंगूठी को भी विशेष प्रकार से आकर्षक बनवाती हैं। अंगूठे में पहनने वाली अंगूठी को ही अंगूटला कहते हैं। चाँदी से कल्डा बनाया जाता है। कल्डा पैर में पायल की तरह पहना जाता है। गरतणी सिर्फ युवतियाँ पहनती हैं। गरतणी को युवतियाँ पायल की तरह बनाकर पैर पर बांध लेती हैं। विवाह होने के बाद, गरतणी उसी

दिन तोड़ दिया जाता है।

बलिया को हाथी के दाँत से बनाया जाता है। बलिया सफेद रंग के होते हैं। बलिया को स्त्री दोनों हाथों में पहनती हैं। बलिया को भुजदण्ड सा भी पहना जाता है। बंजारिन के हाथ बलियों के कारण सुरक्षित रहते हैं। बंजारा लोग अधिकतर वन में रहने के कारण हानिकारक जंतुओं से बचने के लिए इसका उपयोग करते थे। बलिया द्वारा बंजारिन के हाथों का सौन्दर्य भी बढ़ जाता है। हाँसलो सिक्के से बनाया जाने वाला हार है। पूर्वकाल में चाँदी के सिक्के रहते थे। उन सिक्कों से बने हार को हाँसलो कहते हैं। इसके माध्यम से धन भी बच जाता था और गले का गहना भी तैयार हो जाता था। बंजारा समाज के निर्धन वर्ग के लोग हाँसलो ही पहना करते थे, लेकिन चाँदी के नहीं। हाँसलो द्वारा बंजारा स्त्रियों के गले की सुन्दरता दुगुनी हो जाती थी। बंजारा समाज की आर्थिक उन्नति होने के बाद नए ढंग से चाँदी के आभूषण भी वे बनाने लगे हैं। कोपरिया विशेष आकार से बनाया जाता है। कोपरिया भुजा में पहनने के कारण, बंजारा स्त्रियों की भुजाओं की शोभा बढ़ जाती है।

चोटला बालों को सँवारने के खास तरीकों में आता है। पूर्वकाल में बंजारिन के पास अधिक समय नहीं रहने के कारण, बालों की सजावट करने में कठिनाई होती थी। बालों में एक बार चोटला गूंथने पर एक हफ्ते तक बालों को सँवारने की जरूरत नहीं पड़ती थी। चोटले का वजन एक किलो से दो किलो तक रहता है। चोटले से स्त्रियों के बालों की सुंदरता बढ़ जाती है। बालों में चोटला गूंथने पर, बालों को अधिक सुरक्षा मिलती है और बालों का झड़ना भी कम हो जाता है।

स्पष्ट है कि बंजारा समुदाय की बहुरंगी रूपंकर कलाएं, शिल्प और वस्त्राभूषण उनकी सौंदर्य दृष्टि, विविधवर्णी अनुभूतियों और शेष सृष्टि के साथ संबंधों को प्रतिबिंबित करते हैं। उन्होंने तमाम तरह के जीवन संघर्षों, अविराम यात्रा और अभाव के मध्य जीवन के लालित्य को सहज ही जीवंत रखा है। जीवन की जड़ता और एकरसता को तोड़ने की दृष्टि से बंजारा समुदाय के विविधरंगी रूपांकन, हस्तशिल्प, वस्त्र, आभूषण आदि का अविस्मरणीय योगदान है।

लेखक- आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी अध्ययनशाला, कला संकायाध्यक्ष,
कुलानुशासक, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म प्र) 456010
सृजन 407, साँईनाथ कॉलोनी, सेठी नगर, उज्जैन (म प्र)
मोबाइल 098260 47765

■

द्वैमासिक पत्रिका 'कला समय' के संबंध में स्वामित्व तथा अन्य विवरण विषयक
घोषणा-पत्र
फार्म- 4 (नियम 8 देखिये)

1. प्रकाशन का स्थान	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
2. प्रकाशन की अवधि	–	द्वैमासिक
3. मुद्रक का नाम	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
4. प्रकाशक का नाम	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
5. संपादक का नाम	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016

मैं भँवरलाल श्रीवास घोषणा करता हूँ कि ऊपर दी गई विशिष्टयाँ मेरे सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के साथ सही हैं।

तारीख: 31मार्च 2024

भँवरलाल श्रीवास
प्रकाशक के हस्ताक्षर

आलेख

सांप-सीढ़ी का खेल : अच्छे-बुरे कर्मों का मेल

डॉ. महेन्द्र भानावत

सांप और सीढ़ी खेल स्वयं में ही पूरा प्रतीकात्मक खेल है जो मानव जीवन के कई रूपों को दर्शाता है। हमारे बड़ेरों ने इस खेल के माध्यम से न केवल मनबहलाव याकि मनोरंजन प्रदान किया अपितु जीवन शुद्धि के पक्षों को उद्घाटित कर नैतिक जीवन जीने की संकल्पना भी दी।

इस दृष्टि से सांप-सीढ़ी खेल में सांप पतन तथा सीढ़ी उत्थान का द्योतक है। युगल रूप में ये दोनों गुण-अवगुण, अच्छा-बुरा, सगुण-निगुण, आश-निराश, खरा-खोटा, सत-असत, प्रकाश-अंधकार, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क आदि के अनुकरणीय उद्घोषक हैं।

मुझे कतई यह कल्पना नहीं थी कि कभी धर्मयुग में लिखे मेरे सांप-सीढ़ी के खेल शीर्षक आलेख को पढक़र कोई उसे अपनी पीएच.डी. का विषय बनायेगा और वह भी विदेशी। कईबार ऐसा होता है जब कोई मामूली समझे जाते विषय पर लिखा लेख किसी अच्छे प्रतिष्ठित पत्र की शोभा बन जाता है।

18 जुलाई 1965 का धर्मयुग का वह अंक तो अब सहज कहीं उपलब्ध नहीं है पर मेरे लेख की जानकारी विदेशी विद्वानों को है, यह जान मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। किसी का कोई लेखन किस प्रकार, कहां-कहां, कैसे-कैसे अपना महत्व प्रतिपादित करता है, लेखक तथा प्रकाशक भी इससे अनजान रहता है।

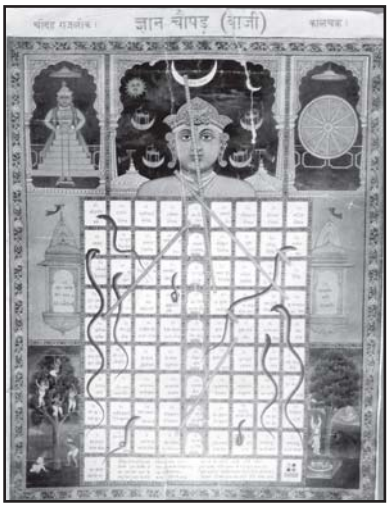

मुझे भी मालूम नहीं पड़ता यदि मेरे पास डेनमार्क से जेकब स्मीट मडसेन नहीं आते। जेकब 5 दिसंबर 2013 को मिलने आए और मुझे यह जानकर बेहद खुशी हुई कि वे कोपनहेगन विश्वविद्यालय से लोकप्रिय खेल सांप-सीढ़ी पर पीएच.डी. के लिए शोधकार्य कर रहे हैं। मेरे से भेंटकर उन्होंने मुख्यत: दो उपलब्धियां प्राप्त कीं। एक तो उन्होंने धर्मयुग का वह अंक

देख लिया जिसमें मेरा सचित्र लेख छपा था। दूसरा प्रसंग इससे भी महत्वपूर्ण उन्होंने मेरे से भेंट करने का माना जिसकी उम्मीद उन्हें कम थी।

जेकब ने बताया कि भारत के विभिन्न प्रांतों मुख्यत: राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र में भ्रमण कर उन्होंने सांप-सीढ़ी खेल के श्वेत-श्याम तथा रंगीन पाठे प्राप्त किए हैं जो 50 से अधिक हैं। सभी में अलग-अलग खंड-खाने बने हैं। संख्यावाचक इन खानों-खंडों में गोटी में आई संख्या के अनुसार अपनी पहचान की कंकरी (चिन्ह) उन खंडों को स्पर्श करती है। जिस खंड में सर्प-मुंह होता है उसमें आते ही खिलाड़ी की कंकरी उस सर्प के सहारे ठेठ अंत तक के खाने में पहुंचानी पड़ती है जहां उसकी पूंछ समाप्त होती है। यह उस कंकरी की पतनावस्था कहलाती है और ठीक इसके विपरीत सीढ़ी का सिरा जिस खंड से प्रारंभ होता है उसके सहारे उस सीढ़ी के ऊपरी सिरे वाले खंड तक कंकरी का चढ़ाव होता है जो उसकी उत्कर्षावस्था होती है।

सांप-सीढ़ी का खेल कहीं ज्ञान चौपड़, कहीं ज्ञानबाजी तो कहीं मोक्षपट के नाम से भी जाना जाता है। जेकब को प्राप्त राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती और संस्कृत के खेल-पाठे मैंने देखे। उसमें एक अरबी लिपि का भी था। इससे इस खेल की व्यापक लोकप्रियता का दिग्दर्शन होता है। मुख्यत: इसका लक्ष्य धर्म-अध्यात्मपरक कर्म-फल का दरसाव ही है। अच्छे कर्म करने से अच्छा फल और बुरे कर्म करने का नतीजा बुरा होता है। ये पाठे सौ खंड तक के होते हैं।

मेरा चित्र-फलक कपड़े पर चित्रित है। ऐसे कपड़े पर चित्रित फलक पट्ट कहलाते हैं। राजस्थान में यह पट्ट कला पड़ कला के नाम से

जानी जाती है जिसमें सर्वाधिक प्रसिद्धि पाबूजी की पड़ को मिली। अब तो ये पड़ें विदेशी संग्रहालयों तक की शोभा बनी हुई हैं। सबसे पहले इन पर लिखने का सौभाग्य मुझे ही मिला और मैंने ही विदेशी स्कॉलर जो मिलर तथा स्मिथ को राजस्थान की यात्राएं करा पड़ कला का अध्ययन कराया।

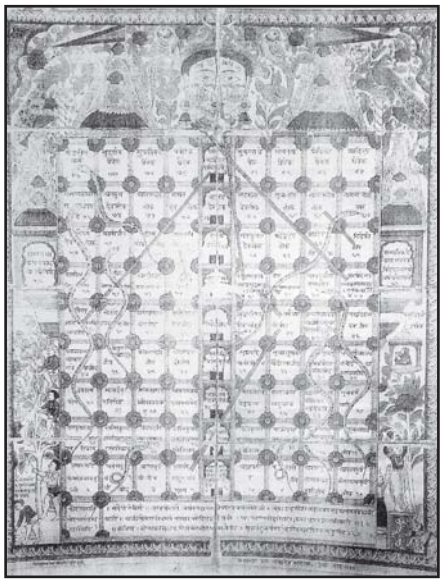

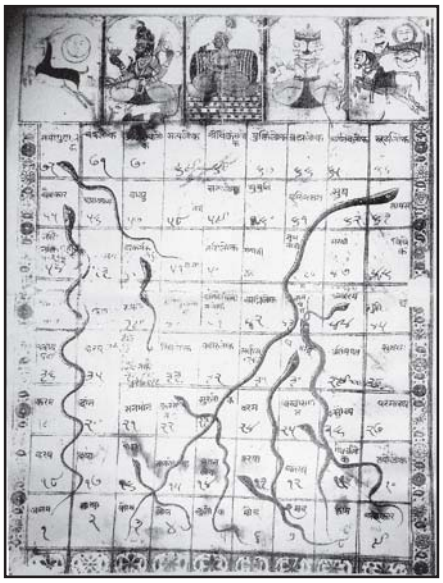

सांप-सीढ़ी के मेरे चित्रपट में 72 खाने हैं और ऊपर ही ऊपर गऊलोक, शिवलोक, बैकुंठलोक भरमलोक के सचित्र खाने हैं। अन्य लोकों के खाने जस, इन्द्र, सूरज, धर्म,तप, जप, चन्द्र, भय, नाग, गंधर्व, स्वर्ग, नर्क गऊ, तथा राजलोक हैं। ऐसे ही देवों में अरण्य, अच्युत, आनल, सहस्त्रा, शुक्र, सनत, प्राण नामक देवों के खाने हैं। इनमें बहुत कम के संबंध में जानकारी मिलती है। जेकब ने बताया कि सबसे प्राचीन सन् 1735 का पाठा उन्हें जयपुर से उपलब्ध हुआ किंतु मेरे पास संग्रहीत पट उन्हें कई दृष्टियों से अधिक महत्त्वपूर्ण लगा।

जेकब के पाठों में सर्पजनित खानों की अधिकता से पता चलता है कि मृत्युलोक में जीवों द्वारा पुण्य की बजाय पापकर्म अधिक किया जाता है। तप, जप तथा सेवा सौहार्द कल्याणजनित सुकृत्यों की न्यूनता से धरती अधिक बोझिल बनी हुई है यद्यपि साधु, संन्यासी, तपस्वी तथा श्रेष्ठीजन सदैव अच्छे कर्म करने का उपदेश देते हैं पर स्वार्थलोलुप मनुज पर उनके उपदेशों का असर बहुत कम होता है।

एक पाठे में चौरासी लाख जीव योनियों को दर्शाया गया है। चित्रों के माध्यम से भी मनुष्य के करणीय-अकरणीय कार्यों के फल-परिणाम,

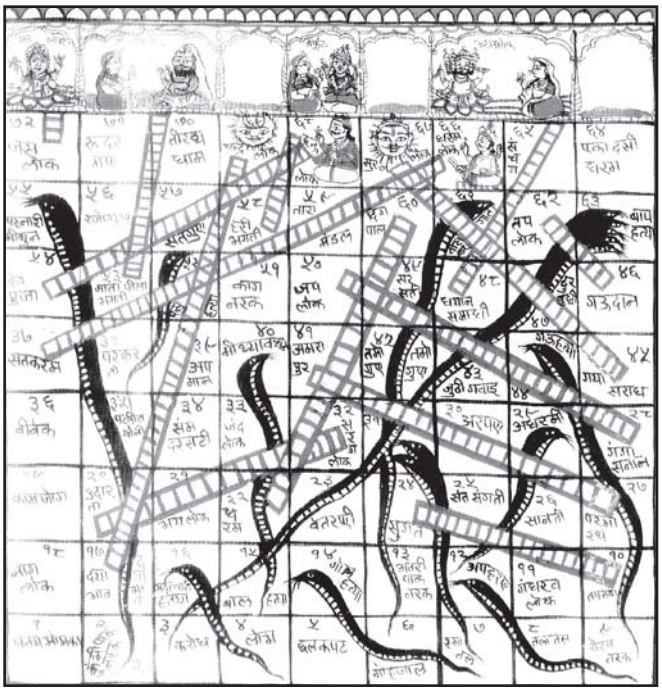

जैसा करोगे वैसा भरोगे सूत्र के माध्यम से दर्शाया गया है। इसके लिए जेकब ने जैन दर्शन के विभिन्न आचार्यों, विद्वानों तथा धर्माचार्यों से भी चर्चा की। उन्होंने बताया कि ये खेलजनित चित्रफलक मानवजीवन को पारदर्शी बनाने के संकल्पित साधन रहे हैं।

अरबी पाठे में 100 खण्ड हैं। उसमें सांपों की भयावहता है किन्तु सीढियों के फलक भी हैं जो सावधानीपूर्वक सात्विक जीवन जीने की राह प्रशस्त करते हैं। कुछ पाठों में तो सीढियों की बजाय खानों में ही शिक्षात्मक सन्देश मिलते हैं।

जीवन के अच्छे-बुरे अनेक भाव संवेग हैं। काम, क्रोध, अहंकार, मद, मोह, माया, नशा, ईर्ष्या, द्वेष, राग, झूठ, विश्वासघात, अविवेक, कुसंगत, अकर्म, तमोगुण जैसी स्थितियां मनुष्य को पतितावस्था की ओर धकेलती हैं। इससे कई प्रकार के दु:ख, कष्ट, विसंगतियां, विपदाएं, विषाद आक्रामक बन मानव को पथ भ्रष्ट करते हैं जबकि अपनी सद्बुद्धि, सुसंगत, सुविचार तथा शुद्ध करणीय कर्म से वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी अच्छा एवं श्रेष्ठ मानव बन सकता है।

जेकब ने बताया कि भारत भूमि सचमुच में महान है। यहां रहकर व्यक्ति पुण्यार्जन करते कर्मफल के अनुसार उच्चस्थ लोक में पहुंचकर अपना आत्मोद्धार कर सकता है।

संक्षेप में इन खानों तथा इनसे संबंधित धारणाओं और लोकव्यापी अवधारणाओं पर यदि अध्ययन किया जाय तो बहुत सी बातें जानने को मिल सकती हैं जो अब तक अज्ञात रही हैं। पुस्तकों तथा शास्त्रों में जो मान्यताएं हैं वे लोकमान्यताओं से जुड़ी हैं। यह भी कि लोक में जो चीजें प्रचलित हैं उनका अध्ययन प्रथमत: तो लोक घटित ज्ञान संपदा के आधार पर ही होना चाहिए ताकि व्यावहारिक संकल्पनाओं से अधिकाधिक परिचित हुआ जा सके।

लेखक- वरिष्ठ लोक संस्कृतिविद् हैं।
904, आर्ची आर्केड, राम-लक्ष्मण वाटिका के पास, न्यू भूपालपुरा,
उदयपुर-313001 मो. 9351609040

मौन साहित्य-सेवी कविवर श्री दाऊदयाल गुप्त

-डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

हम यहां आज से 108 वर्ष पूर्व ब्रज-क्षेत्र में ही जन्मे एक ऐसे समर्पित व्यक्तित्व की चर्चा कर रहे हैं जिसने हिंदी खड़ी बोली और ब्रज-भाषा, दोनों में ही समान रूप से वृहद् परिमाण में उत्कृष्ट काव्य और साहित्य की सर्जना कर मां भारती के भंडार को समृद्ध किया है। आकाशवाणी के मथुरा-वृंदावन केंद्र के बनने के बाद प्रात:काल के प्रसारण का प्रारम्भ जिस ब्रज-वंदना से होता रहा है ''वन्दे ब्रज वसुंधराम'' नामक उस वंदना के रचयिता भी कोई और नहीं श्री दाऊदयाल गुप्त जी ही हैं।

19 नवंबर,1915 को जन्मे इस विरल व्यक्तित्व के संबंध में कुछ कहने से पहले मैं बता देना चाहता हूं कि श्री दाऊदयाल गुप्त जी से मेरा परिचय बीसवीं शती के सत्तर के दशक के प्रारंभ में हुआ। उन दिनों वे कभी-कभी मेरे संगीत विद्यालय में अपने साहित्यिक गीतों एवं लोक-गीतों आदि की धुनें बनवाने हेतु आते रहते थे।

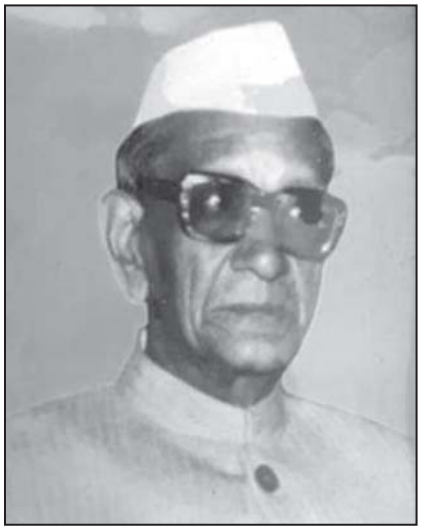

मेरे पूज्य पिताश्री और साहित्यिक-गुरु श्री रघुनाथ दास अग्रवाल 'साहित्य पथिक' श्री दाऊदयाल गुप्त जी के अच्छे मित्र थे। दोनों ही लेखन, संपादन और प्रकाशन के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन के समय राष्ट्र-भक्ति की अलख जगाने का कार्य करते थे। श्री दाऊदयाल जी अपने प्रकाशन संस्थान 'सस्ता साहित्य प्रेस' से जो भी पुस्तकें प्रकाशित करते, मेरे पिताजी को अवश्य भेंट किया करते थे। सत्तर के दशक के प्रारंभ से ही उन्होंने यदि अपनी किसी पुस्तक की एक प्रति मेरे पिताजी को भेंट की तो एक प्रति अलग से मेरे लिए भी अवश्य भेजी। यह उनका मेरे प्रति विशेष अनुग्रह और अनुराग ही था।

अस्सी के दशक के प्रारंभ में जब उन्होंने मुझे ब्रज-भाषा में आठ कांडों में रचित वृहद् महाकाव्य 'श्रीकृष्णचरितमानस' की प्रति भेंट की तो मैं उसके पठन में ऐसा डूब गया कि दूसरे दिन भोर होने पर ही पता चला कि मैं तो एक मिनट के लिए भी सोया ही नहीं। अस्तु।

मैं 1977 में हिंदी-साहित्य में पी-एच. डी. कर रहा था। किसी कारणवश मेरे गाइड को मान्य न करने पर मैं बेहद खिन्न होकर अपना ध्यान वहां से हटा चुका था। 'श्रीकृष्णचरितमानस' को देखकर मैंने पुन: पी-एच.डी. करने का मन बनाया। जब गुप्त जी के सामने अपना मंतव्य रखा तो एक बार तो उन्होंने तपाक से कह दिया कि मेरे ऊपर विषय बनाने पर उसे कौन स्वीकृत करेगा? मैं कोई नामधारी कवि या साहित्यकार तो हूं नहीं, लेकिन मेरी जिद के आगे वह विवश हो गए। बाद में हुआ भी वही। विषय स्वीकृत कराने में ही मुझे जो पापड़ बेलने पड़े, मैं बता नहीं सकता। मैंने 'श्री दाऊदयाल गुप्त के काव्य-साहित्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन' विषय पर पी-एच. डी. की उपाधि भी प्राप्त कर ली।

श्री दाऊदयाल गुप्त जी का हिंदी खड़ी बोली और ब्रजभाषा पर समानाधिकार था। संस्कृत के भी वह अच्छे विद्वान् थे। तभी तो उन्होंने श्रीरामचरितमानस के समानांतर ही ब्रजभाषा में 'श्रीकृष्णचरितमानस' महाकाव्य की रचना कर गोस्वामी तुलसीदास जी की भांति ही अलौकिक कार्य किया। संस्कृत के छंदों का भी श्रीरामचरितमानस की भांति ही प्रयोग किया है। उनका ब्रजभाषा में ही रचित दूसरा महाकाव्य 'श्रीहनुमच्चरितमानस' भी इसी की भांति उत्कृष्ट कोटि की रचना है। दोनों महाकाव्य आठ-आठ कांडों में विभक्त हैं। ब्रजभाषा एवं शास्त्रीय छंदों में ही रचित महाकाव्य 'महारास' में गोलोक वर्णन के साथ वृंदावन धाम, श्रीकृष्ण लीला के साथ रास पंचाध्यायी के आधार पर महारास का वर्णन देखते ही बनता है। हिंदी खड़ी बोली के महाकाव्य 'राधा' की रचना तो उन्होंने बहुत पहले ही कर ली थी जिसका प्रथम प्रकाशन भी सन् 1952 में ही हो चुका था। इसके अतिरिक्त 'शंकर', 'जय ओंकार', महाशक्ति दुर्गा, 'पांचाली', 'बलराम कृष्ण' और 'गीत रामायण' जैसे दस महाकाव्यों के अतिरिक्त स्याम संदेसौ, स्याम-सतक, केशव, ऋतु सिंगार, ब्रज के लोक गीत, ध्रुपद-माल, योग गीतांजलि, युग-मानव, मानवता, ब्रज-वसुंधरा, पत्र-पुष्प, हृत्तंत्री की झंकार, विधु-विभाव (हिंदी ग़ज़लें) जैसी अनगिनत ऐसी कृतियों से मां भारती के भंडार को समृद्ध किया है जिनमें काव्य और गीत का हृदयस्पर्शी समावेश हुआ है।

ब्रजभाषा में उपन्यास लिखने वाले तो आप प्रारंभिक लेखकों में से एक हैं। आपके द्वारा ब्रजभाषा में लिखे अनेक उपन्यासों में उद्धव-गोपी संवाद संबंधी एक सुप्रसिद्ध पद की प्रथम पंक्ति को आधार बनाकर लिखा उपन्यास 'मन न भए दस बीस' सूरदास जी के जीवन और अनुभूतियों पर आधारित ब्रजभाषा का बहुत ही रोचक, भावपूर्ण और पठनीय उपन्यास है। इसका कथानक भले ही सर्वविदित है किंतु इसे अभिव्यक्त करने की आपकी अनूठी पद्धति बरबस ही पाठक का मन मोह लेती है। आपके द्वारा युवावस्था में ही कई खंडों में लिखा गया उपन्यास 'भीषण हत्याकांड' तो अंग्रेज़ सरकार को फूटी आंख नहीं भाया और सन् 1941 में उसके प्रथम खंड के छपते ही उसे जब्त कर लिया गया। यही नहीं, उसके बाक़ी तीनों खंडों की पांडुलिपियों को भी अंग्रेज़ उठा ले गए। इसी प्रकार आपके द्वारा लिखा नाटक 'भयंकर पतन' भी गोरी सरकार का कोपभाजन बना। परम् वैष्णव होते हुए भी आपने समाज को भक्तिपरक काव्य और साहित्य के साथ-साथ देशभक्ति से पूरित ऐसा क्रांतिकारी साहित्य भी दिया जिसने अंग्रेज सरकार को उसे जब्त करने के लिए बाध्य कर दिया। श्री गुप्त जी द्वारा ही मुझे यह ज्ञात हुआ कि मेरे पिताश्री का भी एक वृहद् काव्य-संकलन उन्हीं दिनों जब्त हुआ था।

आप बहुमुखी व्यक्तित्त्व के धनी थे। एक ओर आप लेखनी के परम साधक होने के नाते साहित्य को समर्पित रहे तथा पत्रकारिता एवं संपादन के माध्यम से निर्भीकता और स्पष्टवादिता के साथ स्वच्छ राष्ट्र-चिंतन का मार्ग प्रशस्त करते रहे; दूसरी ओर मुद्रण व प्रकाशन का व्यवसाय करते हुए देश व समाज-सेवा में भी निरंतर लगे रहे। रचनाधर्मिता में राष्ट्रभाषा हिंदी और ब्रजभाषा के उन्नयन के लक्ष्य को सर्वोपरि मानते हुए काव्य के मधुर एवं उदात्त भाव तथा ईश्वर-भक्ति और देश-भक्ति की रस धारा से जीवन को सराबोर करने के संकल्प को पूरा करने में आप आजीवन लगे रहे। लगभग 80 वर्ष की आयु में 29 अप्रैल,1995 को गऊ घाट, मथुरा स्थित अपने गृह-मंदिर में ही आपने अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया।

भले ही इस मनीषी कवि और साहित्यकार पर मेरे बाद भी कई शोधार्थियों ने शोध-कार्य किए, किंतु उनके काव्य-साहित्य का न तो सरकारी स्तर पर उचित मूल्यांकन किया गया और न सामाजिक स्तर पर। अग्रवाल वैश्य समाज ने भी उनके विषय में कभी कुछ नहीं सोचा। सूरदास और तुलसीदास के समकक्ष अप्रतिम काव्य-साहित्य के इस महान् प्रणेता की ऐसी उपेक्षा निश्चय ही किसी व्यक्ति या व्यक्तित्त्व का अपमान नहीं, बल्कि सृजन का गला घोंटने के बराबर है। यदि ऐसा नहीं तो जीवन के 80 वसंत देखने के बाद भी उन जैसे महनीय व्यक्तित्त्व को कोई भी सरकार पद्म सम्मान से वंचित नहीं रखती।

साहित्य के इस महामनीषी को 108 वें जयंती वर्ष की पूर्णाहुति पर मेरी भावपूर्ण विनम्र श्रद्धांजलि!

लेखक- संगीतज्ञ/ कवि/ लेखक/ संपादक, 'संगीत' पत्रिका संस्थापक हैं।
संपर्क: डॉ. राजेन्द्र कृष्ण संगीत महाविद्यालय एवं
शोध-संस्थान संगीत - सदन
महाविद्या कॉलोनी, फेज-2, मथुरा (उ.प्र.) 281 003
मो. 98972 47880 (व्हाट्सएप)

कला समय

अब वेबसाइट पर
देश की सर्व श्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका
'कला समय' अब वेबसाइट पर पाठकों के लिए सुलभ है।
सुधी पाठक
www.kalasamaymagazine.com
के माध्यम से
इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

सुखद सूचना!!

Page Visit counters keep track of how often a website is accessed, and usually display the number of page visits at the bottom of the homepage. We have successfully crossed 100000 page visits.

पेज विज़िट काउंटर इस बात पर नज़र रखते हैं कि किसी वेबसाइट को कितनी बार एक्सेस किया गया है, और आमतौर पर होमपेज के नीचे पेज विज़िट की संख्या प्रदर्शित करते हैं। हमने सफलतापूर्वक 100000 पेज विजिट का आंकड़ा पार कर लिया है।

प्रसंगवश

ज्ञान का आँगन एक है वहाँ कोई लकीर नहीं है : आचार्या कपिला वात्स्यायन

-डॉ. राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी

जनपदीय-आन्दोलन से जुड़ने के बाद लोकवार्ता, लोककला और लोकसंस्कृति के प्रति मेरी रुचि क्रमश: बढ़ने लगी, पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ता या रेडियो सुनता तो लोकवार्ता, लोककला और लोकसंस्कृति के संदर्भों के साथ प्रकाशित-प्रसारित होने वाले समाचारों की ओर ध्यान अपने -आप आकर्षित हो जाता! इसी क्रम में आचार्या कपिला वात्स्यायन का नाम मेरे अवचेतन में कब और कैसे उतर गया ?इसकी मुझे सही सही याद नहीं है!

यों दादाजी (पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी) से श्रीमती सत्यवती मल्लिक का नाम कितनी ही बार सुना होगा किन्तु यह बात मुझे बहुत बाद में मालूम हुई कि कपिलाजी उन्हीं की बेटी हैं।

दादाजी के यहाँ वह संस्मरण सुनता और खूब जोर से हँसता, जब दादाजी कोलकाता में विशालभारत के संपादक थे और वहाँ के ईडन गार्डेन में प्रतिदिन घूमने जाते थे।

एक दिन श्रीरामलाल मल्लिक और श्रीमती सत्यवती मल्लिक भी ईडन गार्डेन में घूम रहे थे। उन्होंने जापानीपुल के पास खद्दर का धोती-कुर्ता पहने एक विशालकाय व्यक्ति को एक विदेशी महिला के साथ जाते हुए देखा। दोनों आपस में चर्चा कर रहे थे कि यह कोई पंडा है और अंग्रेजी में लेक्चर पिला कर इस विदेशी महिला को प्रभावित कर रहा है।

उनके मन में कुतूहल हुआ और वे भी उधर आये लेकिन जब उनको मालूम हुआ कि ये विशालकाय व्यक्ति विशालभारत के संपादक पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी हैं, तब तो बात ही बदल गयी और वे दोनों भी दादाजी के गुरुत्वाकर्षण की परिधि में आ गये। श्रीमती सत्यवती मल्लिक ने दादाजी के अभिनन्दनग्रन्थ : प्रेरकसाधक : में बहुत भावमय संस्मरण लिखा था... ईडनगार्डन से बुद्धजयन्तीपार्क तक। इस घटना की चर्चा अपने संस्मरण में श्रीमती मलिक ने की है। ईडन गार्डेन में कमलसरोवर के पास घूमते हुए एक दिन सबेरे सबेरे पूज्य दादाजी के दर्शन हुए थे ! संभवत: वे कुमारी म्यूरियल लैस्टर के साथ बात करते हुए जा रहे थे।

यह संबंध इतना अन्तरंग बना कि दिल्ली में मल्लिक साहब का घर उनका केन्द्र बन गया। दिल्ली में हिन्दीभवन की स्थापना और संचालन का काम मुख्य रूप से श्रीमती सत्यवती मल्लिक का ही था। हिन्दीभवन की स्थापना के लिए पहली बैठक उन्हीं के निवासस्थान पर हुई थी। बाहर से जो भी हिन्दीसेवी पधारते वे प्राय: उन्हीं का आतिथ्य ग्रहण करते थे। कपिलाजी के बी ए में सफल होने पर दादाजी ने श्रीमती सत्यवती मल्लिक को पत्र लिखा था। ''कपिला के प्रथम डिवीजन में सर्वोच्च सफलता प्राप्त करने का शुभ समाचार मैंने हिन्दुस्तान में देखा। उसे बधाई का पत्र भेज दिया है, सचमुच उसने कमाल का काम किया है।''

दिल्ली के पटेल-हाउस में श्री अटलबिहारी वाजपेयी की अध्यक्षता में पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी की शताब्दी का समारोह हुआ तभी मैंने प्रत्यक्ष रूप से कपिलाजी को जाना और वह भी बड़े अटपटे क्रम की वजह से। बात यह हुई कि समारोह के मुख्य वक्ता श्री नारायण दत्त जी थे, उनका व्याख्यान चल रहा था किन्तु व्याख्यान में दो या तीन बार ऐसा हुआ कि वे एक ही पेज को पढ़ गये। सभी लोग यह समझ तो रहे थे किन्तु किसी ने कुछ भी कहा नहीं ! कपिलाजी सभा में सबसे पीछे की कुर्सी पर बैठी हुई थीं। कपिलाजी आगे आयीं और उन्होंने बडे स्नेहभाव से श्री नारायणदत्तजी से कहा कि आप पहले सभी पृष्ठों को व्यवस्थित कर लीजियेगा। और वे स्वयं दादाजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए व्याख्यान देने लगीं। उनके पत्रों को प्रकाशित करने का विचार उन्होंने वहीं सब के सामने प्रस्तुत कर दिया।

1993 की बात है, प्रो रमेश चंद्र शर्मा राष्ट्रीय-संग्रहालय के महानिदेशक के रूप में आ चुके थे. मथुरा में रहते हुए उनसे बहुत घनिष्टता बन गयी थी। उनको प्रणाम करने के लिए मैं उनके कार्यालय में पहुँच गया।

वे बड़े प्रसन्न हुए. बड़े सहज स्वभाव के और अनुसंधान में लगे रहने वाली विभूति थे।

आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल के शिष्य थे। बोले... तुम कुछ न कुछ करते रहते हो, इस समय क्या चल रहा है ?

मेरे पास उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का ब्रज की लोकशब्दावली वाला प्रोजेक्ट था। हालांकि उसमें विघ्न बहुत आ रहे थे.

प्रो शर्माजी बोले... कि तुम कपिला जी से मिल लो।
मैंने कहा कि जरूर मिलूंगा।
उनको लगा कि मिलूंगा तो अनिश्चय वाला वाक्य है।
उन्होंने तुरंत अपना ड्राइवर बुलाया और कहा कि इनको कपिलाजी के ऑफिस तक पहुँचा आओ।
उन्होंने श्री मुनीश जोशीजी को फोन भी कर दिया।
कपिलाजी के दफ्तर में पहुँच गया. नमस्कार करके बैठा।
वे बोलीं... लोकवार्ता पर काम किया है ?
अच्छा, यह बतलाओ कि अंग्रेजों से पहले भारत में ज्ञान और शिक्षा की कोई परम्परा मौजूद थी ?
**जी, वेद और लोक की दो परम्पराएं थीं।
दूसरा सवाल... अच्छा, ब्रज लोकवार्ता पर काम किया तो वहाँ वानस्पतिक- बिम्ब भी दिखे होंगे ?
**लोक दर्शन में बीज और फल ही कार्य कारण के बिम्ब बने हैं।
ठीक है, धरती और बीज पर काम करना है. आप प्रो सरस्वती के पास चले जाइये।
प्रोजेक्ट शुरू हो गया।
मेरे लिए वहाँ की शोधपद्धति बिल्कुल नयी थीं।
वे कहतीं कि अनुशासनों की सीमा यदि धरती और बीज की समग्रता को समझने में बाधक बन रही है तो उस सीमा को तोड़ दो।
हमें उस सीमा का क्या लेना है ?

अभी तक मैं विश्वविद्यालय वाली अनुशासन की सीमाओं से ज्ञान की परम्परा को देखता था। मैं सोचता कि यह तो समाजशास्त्र का विषय है, यह मनोवज्ञान का विषय है, यह साहित्य के अंतर्गत आवेगा, यह मानवशास्त्र या सौंदर्यशास्त्र की बात है।

कपिला जी फिर समझाने लगतीं, ज्ञान का आँगन एक है, वहाँ कोई लकीर नहीं है, यदि विश्वविद्यालयों ने बनायीं हैं तो वे उनकी सुविधा की बात है, ये कृत्रिम हैं, इनको हम नहीं मानते. हमको समझना है कि धरती और बीज के सम्बन्ध का मनुष्य पर और समग्र परिवेश पर क्या प्रभाव पड़ा ? सभ्यता पर क्या प्रभाव पड़ा ? मनुष्य और मनुष्य के सम्बन्ध पर तथा मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्ध पर क्या प्रभाव पड़ा ?
वे मेरी हर शंका का पत्र से उत्तर देती।
प्रो सरस्वती उनके विचारों की व्याख्या करते।
इस प्रकार मैं अनुसंधान के एक नये क्षेत्र में पँहुच गया था।

जीवन अविच्छिन्न है, तो धरती और बीज के बिम्ब जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अवश्य हैं। सर्वं सर्वेन भावितं. दूसरी बात निरंतरता। आज जो है, उसका कल क्या रूप था. कोई न कोई रूप तो होगा न। धरती और बीज के बिम्ब जीवन में किस किस रूप में पंहुचे ? उनमें क्या क्या परिवर्तन होते गये ? कौन कौन से बिम्ब लोक से शास्त्र में पंहुचे ?
बीच बीच में मेरा व्याख्यान करातीं, श्रोताओं की आखिरी पंक्ति में बैठ कर सुनतीं और व्याख्यान के बाद उसकी समीक्षा करतीं।
जब मैं उनके पास पहुँचता तो वे मुट्ठी बना कर तान देतीं जैसे बहुत जोर का घूँसा लगने वाला है, फिर पीठ पर धीरे से मार देतीं, वह तो उनका आशीर्वाद होता था।

इसी बीच उन्होंने मुझे आई एस एफ एन आर की कांग्रेस में भेजा, जिसमें चालीस देशों के लोकवार्ताविद एकत्र हुए थे।

धरती और बीज प्रोजेक्ट पर काम करते हुए जब उनको यह ज्ञात हुआ कि मैं पं बनारसीदास चतुर्वेदी के जनपद आंदोलन में दीक्षित हूँ। तब तो उनको लगा कि मैं तो परिवार का ही हूँ। पंडित विद्यानिवास मिश्र उनके पास आते तो घंटे दो घंटे भी हो जाते। अज्ञेयजी के इतने अंतरंग तो वे ही थे। बाद में कपिलाजी को यह भी ज्ञात हो गया कि मैं पंडितजी का स्नेहपात्र हूँ।

मुझे उन्होंने दूसरा काम सौंप दिया... दादाजी के पत्रों का संकलन करो और श्री नारायण दत्त जी के साथ जुड़ जाओ।
उसके बाद जो सिलसिला शुरू हुआ, वह अभी तक चल रहा है।

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है। साथ ही समीक्षा दो पृष्ठों से अधिक की नहीं होना चाहिए।

- संपादक

अमेरिकी कवयित्री लुइस ग्लुक की कविताएं

अमेरिकी कवयित्री लुइस ग्लुक को वर्ष 2020 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला है। विश्व कविता में आज प्रस्तुत है उनकी तीन महत्वपूर्ण कविताओं का अनुवाद।

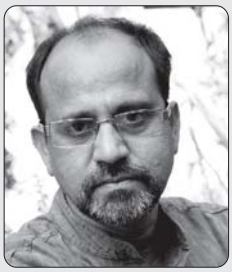

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रति: शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

रात

सड़क फिर से सफ़ेद हो गई थी ,
झाड़ियाँ भारी बर्फ़वारी से ढकी हुईं थीं
बर्फ़ से ढ़के हुए पेड़ चमक रहे थे।

मैं अँधेरे में लेटी हुई
इस रात के गुजर जाने का इंतज़ार कर रही थी।
ऐसा लगता था जैसे यह अब तक की सबसे लम्बी रात थी ,
उस रात से भी लम्बी जिस रात मेरा जन्म हुआ था।

मैं हर वक़्त तुम्हारे बारे में लिखती हूँ, मैंने जोर से कहा।
हर बार जब मैं कहती हूँ 'मैं' इसके मायने तुम होता है।

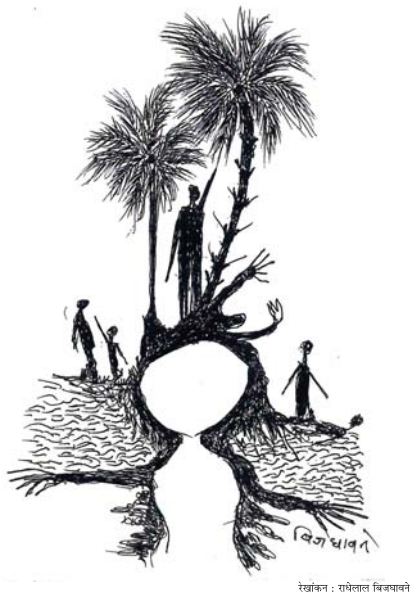

रेखांकन : राधेलाल बिजधावने

स्कूली बच्चे

अपना बस्ता लिए आगे बढ़े जाते हैं स्कूली बच्चे
भोर से ही जुटी थीं माएँ मेहनत करने
जाती हुई फसल से पके हुए लाल सेवफल चुनने
जैसे किसी दूसरी भाषा से चुने जाते हैं शब्द ।
और दूसरे किनारे पर
वे हैं
बड़ी बड़ी मेज़ों के पीछे
इन उपहारों का इंतज़ार करते ।
कितनी व्यवस्थित हैं – ये कीलें
जिन पर बच्चे टाँगते हैं
अपने आसमानी ओवरकोट या पीले ऊनी स्वेटर।
और शिक्षक उन्हें अपनी हिदायतों से ख़ामोश रहना सिखाएंगे
और इससे बचने के लिए माएँ
बगीचों में सेवफल तलाशने दौड़ेंगी
अपनी तरफ खींचेंगी
फलदार दरख़्त की उदास डालियाँ
जिन पर अब बहुत कम गोला बारूद बचा है ।

एक फैन्टसी

मैं आपको कुछ बताती हूँ: हर रोज
लोग मर रहे हैं। और यह बस शुरुआत है।
हर दिन कब्रिस्तान में नई –नई विधवाएँ जन्म लेती हैं,
अनाथ । वे अपने हाथ बाँध कर बैठती हैं,
अपने जीवन के बारे में कुछ –कुछ सोचते हुए।
वे फिर कब्रिस्तान जाती हैं, इनमे से कुछ तो
पहली बार जाती हैं। उन्हें डर लगता है रोने से,
कभी न रोने से। फिर कोई उनकी तरफ बढ़ता है
उन्हें समझाता है कि अब आगे उन्हें क्या करना है,
इसका अर्थ होता है
कुछ शब्द कहना, तो कभी
खुली हुई क़ब्र में मिट्टी डालना।
और उसके बाद सभी घर लौटते हैं,
घर जो अचानक सहानुभूति प्रकट करने वालों से भर गया है।
विधवा सोफ़े पर बैठती है, धीर–गम्भीर,
एक–एक कर लोग उससे मिलने के लिए आगे आते हैं,
वे कभी उसका हाथ पकड़ते हैं, कभी गले लगाते हैं,
इन लोगों से कहने के लिए उसके पास
हमेशा कुछ न कुछ होता है,
वह उन्हें धन्यवाद कहती है,
यहाँ आने के लिए धन्यवाद।
अपने दिल में वह चाहती है कि वे चले जाएँ.
वह लौटना चाहती है क़ब्रिस्तान
अस्पताल के उस कमरे में। वह जानती है
कि अब यह सम्भव नहीं। लेकिन यही उसकी एकमात्र उम्मीद है,
पीछे लौटने की कामना। भले ही थोड़ा पीछे,
बहुत पीछे नहीं
विवाह और पहले चुम्बन तक नहीं।

गीत

शिशिर उपाध्याय के गीत

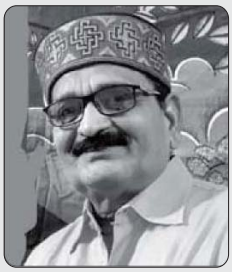

शिशिर उपाध्याय

जन्म = 10 फरवरी, 1958, खंडवा (म.प्र.)
शिक्षा=बी.एस.सी. (कृषि)
प्रकाशन = तुम्हारे लिए (काव्य संग्रह), वो घर नहीं रहा (काव्य संग्रह), नदी प्रकृति तुम और मैं (काव्य संग्रह) जैव सी तू गयोज गाँव सी (निमाड़ी लोक भाषा काव्य)।
सम्पर्क: 21, सृजन शर्मा कॉलोनी, बड़वाह, जिला खरगोन-451115 (म.प्र.)
मो.=9926021858

वाह-वाह रे कुंभकार तूने क्या गज़ब किया... (दीपक - कुम्भकार संवाद)

वाह - वाह रे कुंभकार तूने क्या गज़ब किया...
माटी को सान कर मुझे दीपक बना दिया .....
पहले घुमाया तूने मुझे, अपने चाक पर
हौले से सुखाया मुझे, लकड़ी की ताक पर
जब बन गए हजार, तो फिर सबको तपाया ,
संस्कार आँच के दिए भट्टी की आग पर , ,
'माटी के लाल' थे, तो हमें लाल रंग दिया
वाह- वाह रे कुंभकार तूने क्या गजब किया.....
बेटी ने तेरी टोकनी में सबको भर दिया 'कुमकुम' लगा के माई ने घर से बिदा किया
बाजार में बिका ,मैं गली गाँव में बिका,
जिसने भी खरीदा मैं उसके साथ चल दिया
खाली थी तेरी टोकनी
तो जेब भर दिया
वाह -वाह रे कुंभकार तूने क्या गजब किया .....

रेखांकन : राधेलाल बिजधावने

मुंडेर पे जला मैं, द्वार -द्वार में जला
माँ शारदा के शब्दों के श्रृंगार में जला
माँ नर्मदा की धार और कगार में जला बच्चों की फुलझड़ी में बार-बार मैं जला
'मावस की कालिमा' को 'चाँद-चाँद' कर दिया...
वाह -वाह रे कुंभकार तूने क्या गजब किया .....
छाती में खून तेल है, बाती ज़मीर है
पतंग मेरे प्यार में रहता अधीर है
इक दूसरे की आग में जलना ही प्यार है ,
पतंग संग ,जल रहा मेरा शरीर है
मैंने तो मोहब्बत में, इतिहास रच दिया
वाह- वाह रे कुंभकार तूने क्या गजब किया ....
दीपक कहा किसी ने, किसी ने दिया कहा
'कवियों ने दान देने का' इक काफिया कहा
कवि इंद्रजीत सिंह ने 'निशा का पिया' कहा
लेकिन कवि 'शिशिर' ने मुझे औलिया कहा
दिनकर ने मुझे 'रात का प्रहरी' बना दिया
वाह- वाह रे कुंभकार तूने क्या गजब किया
माटी को सान कर मुझे दीपक बना दिया....

मैं गंगू दीए वाला

मैं गंगू दीए वाला, मैं गंगू दीए वाला
गाँव - गाँव में घूम के बेचूँ
उजियारे का प्याला,,
मैं गंगू दीए वाला,मैं गंगू दीए वाला...
युग -युग से जनहित में मैं ने, माँ - माटी को रौंदा
अपने हाथों सान -सान कर एक बनाया लौंदा,
उस लौंदे को चाक पर रख कर
ये जादू कर डाला,
मैं गंगू दीए वाला...
लाल -लाल माटी को मैं ने श्रम सीकर से सींचा
मेरे गमलों से सुरभित है,
बगिया और बगीचा,
शीतल कर दे तन और मन को
ये मटका काला काला
मैं गंगू दीए वाला
जात -पाँत ना पूछी मैंने
बर्तन सभी बनाए
इसीलिए तंदूरी रोटी
सबके मन को भाए
मैं फूटी हांडी में खाउँ
देखे ऊपर वाला
मैं गंगू दीए वाला,
नवरात्रि त्यौहार हो चाहे
होय चतुर्थी करवा
मैं ही बनाऊँ माई के गरबे
मैं ही बनाऊँ 'करवा'
मेरी बनाई 'दहीं की हांडी'
फोड़े नंद का लाला,
मैं गंगू दीए वाला ,
मैं गंगू दीए वाला,
गाँव-गाँव में घूम के बेचूँ
उजियारे का प्याला....

कविता

धर्मपाल महेंद्र जैन की कविताएँ

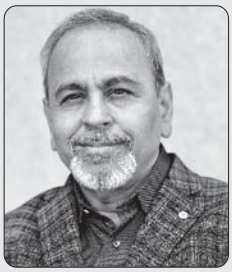

धर्मपाल महेंद्र जैन

प्रतितिधि प्रवासी कवि। तीन कविता संकलनः इस समय तक, कुछ सम कुछ विषम, अधलिखे पन्ने एवं सात व्यंग्य संकलन प्रकाशित।

संपर्क : 22 फैरल एवेन्यू, टोरंटो, कनाडा-फोनः 001 416 225 2415.

dharmtoronto@gmail.com

मो.: 9926021858

रेखांकन : राधेलाल बिजधावने

देवता

बड़ा-सा पत्थर मिला
अनजाने ठोकर लगी थी उसे।
किनारे से दूर रख कर
मैंने क्षमा मांगनी चाही।
वह हंसकर बोला-
सिंदूर लगा दो और
कुछ पत्तियाँ चढ़ा दो बस।

बातें

बातें बिना पैरों के
कहाँ से चली आती हैं
होठों तक।
मैं कहता हूँ-
मुझे कहो जो कहना है,
आज़ाद हो तुम।
वे रुकी रहती हैं
कुछ लौट जाती हैं भीतर
फिर दौड़ आती हैं,
होठों पर बैठी रहती हैं
इस उम्मीद में कि किसी दिन
एक बात खड़ी हो गई निडर तो
दस और जुड़ जाएँगी उसके साथ
और उनके कानों तक
पहुँच जाएँगी।

सहयात्री

फड़फड़ा बोल उठते थे पन्ने
जब दौड़ती रेल की
खुली खिड़की से घुसकर हवा
पढ़ना चाहती थी क़िताब
मेरे संग सहयात्री बन।
भोपाल से मुंबई के रास्ते
बताती जाती थी अंतहीन
खेत, खलिहान, शहर, लोग सबके बारे में।

अब नहीं बतियाती हवा
क़िताब है पर खुलती नहीं
वायुयान की पारदर्शी खिड़की से
झाँकता हूँ तो
कई बार बादलों से घिरा होता हूँ
वे तेज़ दौड़ते होते हैं
चमकते आसमान में।
वे मौन रहते हैं मेरे सहयात्री की तरह।

यान में यात्रियों के सामने
लगी है स्क्रीन बित्ते भर की
अपनी सीटों में समाये लोगों ने गंतव्य तक
इसमें समेट ली है अपनी छोटी-सी दुनिया।

विकास की आँधी ने डाल दी है दरार,
शायद, बदसूरत दरार।
क़यामत के वक़्त
अपनी स्क्रीन में खो जाएँगे लोग
पड़ोसी से बिना कुछ कहे।

कविता

शिव डोयले की कविताएँ

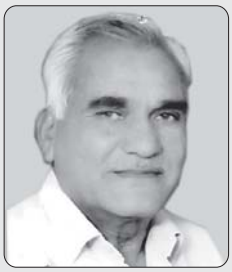

शिव डोयले

जन्म देन 26 मार्च 1949
नरसिंहगढ़, जिला-राजगढ़(म.प्र.)
लेखन विधा -गीत, कविता, व्यग्य लघुकथा, ह्यक्कु आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओंमेंप्रकाशन ।
प्रकाशित कृति जैसा मैंने देखा (क्षणिकाएँ)मुट्ठी भरधूप(लघुकथा) तथा चाँद हथेली पर(काव्य संग्रह)
हाइकु, मुक्तक संग्रह प्रकाशनाधीन
सम्पर्क -झूले लाल कॉलोनी, हरिपुरा, विदिशा 464001 (म.प्र.)
मो. 09685444352

घरौंदा बनाती बिटिया

पैर पर मिट्टी चढ़ा
हाथों से दबा-दबा कर
बेटी बना रही है घरौंदा
चिकनी मिट्टी की
गुदगुदाहट में खुश है वह
सौंधी गंध तैर रही है
उसके ख़्यालों में
मेरा भी एक घर होगा
घर में आँगन होगा
लिपा पुता, राँगोली सजा
खिड़की होगी
होंगे दरवाजे
दरवाजे पर
खड़ा होगा राजकुमार
जो कभी मुझे देखेगा

रेखांकन : राधेलाल बिजघावने

और कभी घर को
कहेगा समझाईश के बतौर
पैर बाहर मत निकालना
छोटा सा घर
टूट जायेगा

संगत का प्रभाव

लोगों ने झाड़कर
फेंक दिए थे
मेरी तरफ काँटे
मैंने उन्हें समेटा
एक कोने में
मिट्टी के ढेर पर
रख दिये
पानी पाते ही
हो गये वे हरे
हरियाली की कोमलता में
चुभन नहीं होती
आने लगी
उनमें से सुगंध
शायद फूलों की
संगत का प्रभाव है

दाने चिड़िया के

फैंकता हूँ रोज
मुट्ठी भर दाने
देखते ही आ जाती हैं
चिड़ियाएँ
तुरत-फुरत चुगकर
टुकुर-टुकुर
मुझे देखा करती हैं
कम पड़ जाते दाने
मेरी मुट्ठी में दाने
चिड़ियाओं की भूख
मिटाने लायक
क्या नहीं हो जाते
यही सोच-सोच कर
देखने लग जाता हूँ
उस ऊपर वाले को
तो कभी
खाली हुई मुट्ठी को

लिख ही दिया

मैंने देखा
समंदर की रेत पर
दिल की तरह
बने कुछ निशान
वहीं था
एक गुलाब का फूल
बिखरा
ऐसा लगा
किसी टूटे दिल के
आशिक ने
लिख दिया हो
ग़ज़ल का कोई
मिसरा

कविता

विज्ञान व्रत की ग़ज़लें

विज्ञान व्रत

जन्म : 17 अगस्त 1943
ग्राम तड़ा (मेरठ), उ.प्र. भारत
प्रकाशित पुस्तकें–बाहर धूप खड़ी है,चुप की आवाज,जैसे कोई लौटेगा, तब तक हूँ (गजल संग्रह)। खिड़की घर आकाश, (दोहा संग्रह) समपदी, में 101 दोहे संकलित, गजलों का संगीतबद्ध अल्बम (C.D.)
पता: एन–138. सैक्टर–25,
नोएडा–201301
मोबाईल: +91–9810224571
E-Mail: vigyanvrati@gmail.com

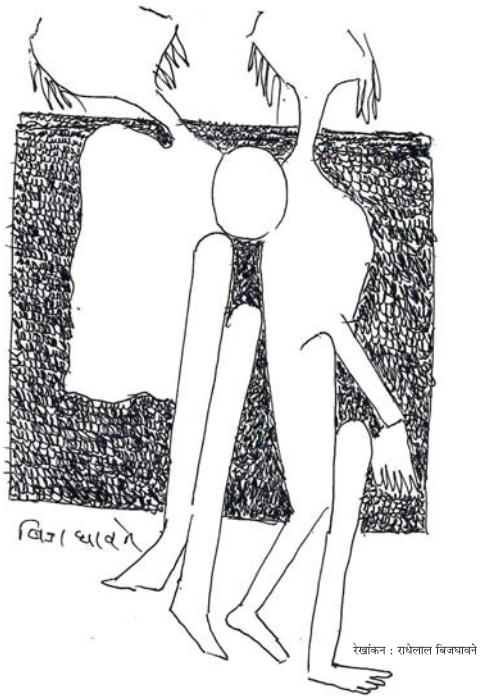

रेखांकन : राधेलाल बिजघावने

एक

वो तब तक दरिया न हुआ
मैं जब तक सहरा न हुआ
वो जब तक मेरा न हुआ
मैं खुद भी अपना न हुआ
खुद से भी मिलना न हुआ
लेकिन मैं तनहा न हुआ
दुनिया में क्या–क्या न हुआ
मैं उसकी दुनिया न हुआ
मैं अब तक खुद–सा न हुआ
ये होना होना न हुआ

दो

मुझमें आप बसें तो जानूँ
मेरा दर्द सहें तो जानूँ
जिन रिश्तों के नाम नहीं हैं
उनको आप जियें तो जानूँ
मेरा हिस्सा उनमें जो है
मेरे नाम करें तो जानूँ
मुझको उनके नाम से क्या है
वो कुछ नाम करें तो जानूँ
ऊला मिसरा हूँ आमद का
सानी आप रहें तो जानूँ

तीन

मुझको समझा मेरे जैसा
वो भी गलती कर ही बैठा
उसका लहजा तौबा ! तौबा !!
झूठा किस्सा सच्चा लगता
महफ़िल–महफ़िल उसका चर्चा
आख़िर मेरा किस्सा निकला
मैं हर बार निशाने पर था
वो हर बार निशाना चूका
आख़िर मैं दानिस्ता डूबा
तब जाकर ये दरिया उतरा

चार

आप ने मुझ को चुना हो
काश ऐसा ही हुआ हो
आप जिस को ढूँढ़ते हैं
क्या पता वो लापता हो
अब वही मुझ को जियेगा
जो कि मुझ पर मर मिटा हो
क्या लड़ूंगा अब उसी से
जो कि मेरा हो चुका हो
फिर कभी दुनिया बने जब
आदमी इन्सान–सा हो

साक्षात्कार

महीन रंगों से साहित्य की बुनावट करनेवालीडॉ.मीना बया से
डॉ. कहानी भानावत की बातचीत के प्रमुख अंश

पुरस्कार जीवन में संजीवनी का काम करते हैं : डॉ. मीना बया

डॉ. कहानी भानावत

साहित्य का संबध हर अन्य कलाओं से है। चित्रकला भी उससे अछूती नहीं है। अब तो एक कलाविधा का दूसरी के अन्तर्संबंधों पर विद्वानों में अधिक मंथन हो रहा है। चित्रकला भी मेरी दृष्टि में साहित्य के बहुत नजदीक है। जिस ब्रश से हम पेंटिंग करते हैं वह हमारी कलम है और जिन रंगों को कागज-केनवास पर उभारते हैं वह हमारा अक्षर जगत है। डॉ. मीना बया ने अपने जीवन में अनेक तरह के कार्य किये। वे अगर साहित्य के क्षेत्र में आतीं तो इसमें भी बहुत कुछ वह कर गुजरतीं जिससे चित्रकला की तरह ही उनकी पहचान बनती।

कूंची कलम को रंगदार बनाने में अहम भूमिका रखती है। कलम के रिश्ते के साथ यदि कूंची की मैत्री पक्की हो गई तो समझ लो कलम के सोने पर सुहागे का मुकुट शोभित हो गया। कई बार कूंची की रंगदारी कलम के आशय के इशारे को ऐसा आसमान देती है कि अक्षरों के विन्यास भी स्वर्ण मंडित लगते हैं। कईबार चित्र के बिना साहित्य अबोला रह जाता है तो कईबार चित्र साहित्य के अनेक गवाक्ष खोलने की सामर्थ्य प्रदान करता है। डॉ. मीना बया के चित्र साहित्य की इसी बुनावट को बयां करते हैं।

उदयपुर की डॉ. मीना बया की सृजनयात्रा में आए विभिन्न पड़ावों पर बातचीत करते समय मुझे खड़ीबोली हिंदी के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' के प्रणेता अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की लिखी 'एक बूंद' कविता की याद आ रही है जिसमें बादलों की गोद से निकलते समय एक बूंद के मन में कई तरह के जीवनधर्मा संकल्प-विकल्प उठते हैं लेकिन अंत में वह एक सीपी में गिर मोती बन जाती है। उसी तरह मीना बया का प्रारंभिक जीवन भांति-भांति के ऊहापोहों, आशा-निराशा और तेज धार देते संघर्षों से गुजरता अभिराम बना हुआ है।

बकौल डॉ. मीना बया के- ''बचपन में पेंटिंग की जो तस्वीरें मैं देखती थी, वह मुझे बहुत अच्छी लगती थीं लेकिन मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि मैं आर्ट में कुछ काम करूंगी और अपना केरियर बनाऊंगी। आर्ट का कोई भी क्षेत्र संगीत, नाटक, थिएटर, पिक्चर, डिजाइनिंग; सभी मुझे लुभाते थे पर मैं बनना कुछ और चाहती थी। यह जो रिसर्च वाला क्षेत्र है वह मुझे बहुत अच्छा लगता था। सोचा था कि मुझे साइंटिस्ट बनना चाहिए। उसमें भी क्रिएटिविटी होती है। नई-नई चीजों की खोज होती है और आगे-से-आगे निरंतर कुछ नया करने की जिज्ञासा बनी रहती है।''

अपनी प्रारंभिक शिक्षा के दिनों की याद में खोई डॉ. मीना बताती हैं, ''जब वे मिशनरी स्कूल में पढ़ती थीं तब डांस सीखने के लिए सुबह जल्दी जाना पड़ता था। मेरा सारा काम सिस्टेमैटिक था। हर चीज समयबद्ध होती थी। इससे मुझे अनुशासनात्मक जीवन जीने की प्रेरणा मिली। कैसे उठना, बैठना, बातचीत करना, अपनी चीजों को व्यवस्थित करते हुए करीने से जीवन जीना, यह सब सीखा और मुझे लगा कि यही चीजें हैं जिनसे व्यक्तित्व का विकास जुड़ा हुआ है। पढ़ाई के समय टीचर जब होमवर्क करवातीं, कॉपियां चेक करतीं या कोई कमी रह जाती तो बताती थीं। उस दौरान मैं अपनी कॉपी में कुछ-न-कुछ बनाती रहती थी जो मुझे बहुत अच्छा लगता था।''

वे बताती हैं, ''बचपन में मेरा क्लासिकल म्युजिक में बहुत रुझान था। मेरी रुचियां एक जैसी नहीं थीं। नवीं कक्षा में आने पर तीन विषय लेने होते थे। मुझे मैथ्स लेना था पर पिताजी मुझे डॉक्टर बनाना चाहते थे। कारण कि परिवार में कोई डॉक्टर नहीं था। इंजीनियर्स की भरमार थीं। लड़की के लिए डॉक्टर बनना ज्यादा ठीक समझकर उन्होंने मुझे जबर्दस्ती प्रवेश दिला दिया। मुझे यह कतई अच्छा नहीं लगा। एकबार तो लगा कि मैं कहीं भाग जाऊं। मां को कहा कि मैं अपना विषय चेंज करूंगी। उन्होंने मेरी बात पर कोई गौर नहीं किया और मैंने आर्ट्स ले लिया। घरवाले मेरे इस कार्य से तनिक भी सहमत नहीं थे। उन्हीं दिनों मैंने सितार की प्रैक्टिस शुरू कर दी जो दस-पंद्रह वर्ष तक रही। मेरे मन में

एक चैलेंज था। मां ने कहा कि तेरे पिता लड़ेंगे। सख्त नाराज होंगे और तेरी पढ़ाई बंद कर देंगे।''

मीनाजी नहीं चाहती थीं कि उनका केरियर ठप्प हो जाए। वे अच्छी तरह जान गई कि परिवार का कोई भी सदस्य उनके पक्ष में नहीं है किंतु उन्हें अपनेआप पर पूरा भरोसा था कि वे जो कुछ कर रही हैं वह कहीं गड़बड़ नहीं है। उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी। इसके साथ-साथ इतर एक्टिविटीज भी उसी गति से चलती रहीं। उन्होंने पेंटिंग शुरू की। फैंसी ड्रेस में भाग लिया। अपना मेकअप स्वयं किया और जब समारोह में उसका प्रदर्शन किया तो प्रथम आईं। पढ़ने में भी वे सदैव अव्वल रहीं। स्नातक में मेरिट ली। स्नातकोत्तर में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। यूनिवर्सिटी में टॉप कर समाज को गौरवमंडित किया।

यह वह समय था जब एकओर तो उन्हें अपने पायदान पर अपना कैरियर बनाना था किंतु दूसरी ओर घरवालों का कोई सपोर्ट नहीं था बल्कि विरोध-ही-विरोध था। ऐसी स्थिति में भी मीनाजी ने बड़ा धैर्य रखा और सायंकालीन संगीत कक्षा ज्वाइन करली। पिताजी तो सख्त नाराजगी का रूप लिए थे। एक समय तो वह भी आया जब उन्होंने बोलना ही बंद कर दिया। एक लड़की के लिए मीनाजी को यह सब करना समाज को भी मान्य नहीं था। वे चुपचाप यह सब देखती रहीं, सुनती रहीं, समझती रहीं किंतु उन्हें तो किसी भी हालत में रुकना नहीं था। अकेले ही चलते रहने में अपने पर पूर्ण भरोसा था और उतना ही आत्मबल था। सोचती रहतीं, जो अच्छे कार्य हैं उनके पक्ष में चाहे कोई भी न हो परंतु करते रहना चाहिए किंतु ऐसा कार्य कभी नहीं करेंगी जो उन्हें अथवा उनके परिवार याकि समाज के लिए ठीक न हो।

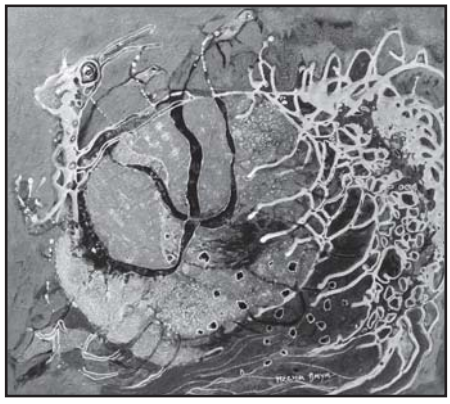

उन्हीं दिनों विद्या भवन में संगीत की प्रतियोगिता हुई। उसमें घर से कोई नहीं आया। मीनाजी अकेली गईं। रात को लौटते बारह बज गई। वहां उन्हें प्रथम पुरस्कार मिला जो इतना भारी था कि उनसे उठ नहीं रहा था। उनकी खुशी देखते ही बनती थी किंतु भीतर-ही-भीतर उनका मन कचोट रहा था कि काश! इस समय कोई ताली बजानेवाला घरवाला उनके साथ होता।

अब मीनाजी के लिए यह जरूरी था कि उन्हें कोई जॉब मिल जाए ताकि वे अपने सृजन को जारी रख सकें। भाग्य से उन्हें कॉलेज में नौकरी मिल गई। वे बताती हैं कि जॉब उनके लिए जरूरी था किंतु वह प्राथमिकता में नहीं था। उन्हें लगा कि वे पेंटिंग कर रही हैं। जॉब है इसलिए पेंटिंग नहीं कर रही हैं किंतु उस जॉब के कारण वे आज भी अपनी पेंटिंग में लगी हुई हैं। उन्होंने बताया कि आर्ट फिल्ड में काम करना आसान नहीं है। यह ब्लाइंड बिजनेस है।

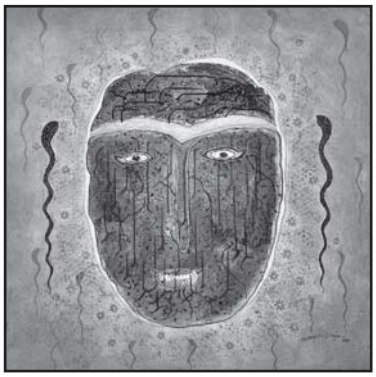

उनकी दृष्टि में कला स्व आनंद के लिए, आत्मा के आनंद के लिए है। यह सब तो ठीक है पर 'भूखे भजन न होय गोपाला, यह लो अपनी कंठी माला।' सो पिछले 30 वर्षों से वे इस लंबी यात्रा की सहगामी बनी हुई है।

जब मीनाजी को राष्ट्रीय ललित कला अकादमी की स्कॉलरशिप मिली तो उन्होंने दिल्ली के घड़ी स्टूडियो में पेंटिंग और ग्राफिक (प्रिंट मेकिंग) में कार्य किया। उन्होंने महसूस किया कि ग्राफिक के कारण वे एक नए संसार को देख पायीं। वहां दुनिया भर के कलाकारों से उनका संपर्क हुआ और यह महसूस किया कि उदयपुर जैसी छोटी जगह से पहलीबार अकेले निकल कर एक बड़े संसार से साक्षात्कार किया है। वहां कोई बंधन नहीं था और एक अलग ही तरह की दुनिया थी जिसके कारण उदयपुर के एक बंधेबंधाए जीवन को छोड़ एक विशाल परिदृश्य को अपने बड़े हिये और बड़ी आंखों से निहार सकीं।

उन्होंने बताया, ''उदयपुर में मैंने मांडनें और कल्पसूत्र पर जो काम किया उससे मुझे अनूठी पहचान मिली किंतु मुझे यह लगता रहा कि मैं किसी फ्रेम में बंध गई हूँ। दिल्ली में विविध आर्ट गैलेरियों, आर्ट कॉलेजों तथा संग्रहालयों में बहुत कुछ अलग देखा। वहां ललित कलाओं और शिल्पों से जुड़े विभिन्न विद्वानों से संपर्क हुआ। उनसे मैंने बहुत कुछ सीखा और मेरे कार्य तथा जीवन व्यवहार में भी उसका व्यापक असर पड़ा।

यहीं नहीं, साहित्य के क्षेत्र के कवियों, कहानीकारों के अलावा संगीतज्ञों, कला समीक्षकों, रंगमंच के कलाकारों तथा अभिनेताओं और आलोचकों से अनेक विषयों पर संवाद के दौरान मैंने यह पाया कि सारी कलाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं और उनका आपकी अंत:सम्बन्ध बहुत गहरा है। अनेक जगहों पर मेरे अपने द्वारा सृजित पेंटिंग की एकल तथा सामूहिक प्रदर्शनियां हुईं जिनके कारण भी मैंने अपने सृजन को प्रभावी बनाया। सांस्कृतिक मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली से प्राप्त फैलोशिप से भी मैंने अपने कलाक्षेत्र को समृद्ध किया। कई पुरस्कार भी मुझे मिले। इन सबसे मुझे नया उत्साह मिला और लगा कि पुरस्कार जीवन में संजीवनी का काम करते हैं।''

अपने कार्य से हर कलाकार संतुष्ट होता है किंतु वह यह भी अपेक्षा रखता है कि दूसरे लोग भी उसके कार्यों को सराहें और अपने ढंग से उसका मूल्यांकन करें। इस बारे में मीनाजी भाग्यशाली हैं कि वे अपने

कार्य से संतुष्ट हैं। जहां तक मूल्यांकन का सवाल है आगरा तथा कुरुक्षेत्र आदि विश्वविद्यालयों की छात्राओं ने उन पर शोध प्रबंध लिखे हैं। समय-समय पर टीवी और आकाशवाणी वालों ने भी उनके कलासृजन पर वार्ताएं, परिसंवाद और परिचर्चाएं आयोजित की हैं। उनकी मान्यता है कि सृजन से व्यक्ति इंसान बना रहता है नहीं तो वह मशीन की तरह रहता है। यूं तो सभी क्षेत्र श्रेष्ठ हैं पर कला और साहित्य का क्षेत्र ऐसी स्वच्छंदता देता है जिसके कारण व्यक्ति अपने भीतर को बाहर उद्भाषित करता है। कॉलेज में अपनी छात्र-छात्राओं के बीच बहुत कुछ नया अध्ययन करने का रहता है। तब लगता है चाइल्ड लाइफ का जीवन जीना एक कलाकार के लिए जरूरी है।

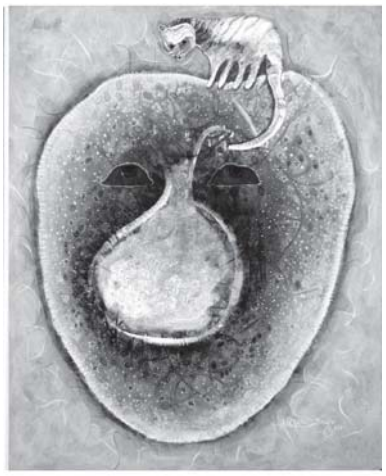

डॉ. मीनाजी ने अनुभव किया कि अपने अवचेतन में जो बालसुलभ चेष्टाएं भरी हुई होती हैं उनको लेकर वह अपने कैनवास पर उतारती हैं। प्रकृति प्रदत्त छोटे-छोटे जीवों को लेकर वे कई तरह की कल्पनाओं में खो जाती हैं। महिलाओं और बालिकाओं की जो बहुत सारी समस्याएं हैं उन्हें पंखों में बांध रखने की बजाय उनकी सुरक्षा करते हुए उन्हें लंबी उड़ान और स्वच्छंदता देना हमारा नैतिक कर्तव्य है। यों हम सब नेचर के हिस्से हैं। अगर हमने उन्हें बर्बाद कर दिया तो फिर बचेगा ही क्या? पशु-पक्षी बिना किसी स्वार्थ के हमारे साथ रहकर हमारे साथी बनते हैं। छोटे-छोटे सभी जीव हम से जुड़ते हुए अपना जीवन बसर करते हैं। उनके साथ यदि हमारा निष्ठुर व्यवहार होगा तो वे हमसे बदला लेंगे-ही-लेंगे।

मीनाजी का जीवन घाट-घाट के रंगों का बहुआयामी सफर रहा है। इस सफर के दौरान राजस्थान के रंगों ने उन्हें बेहद प्रभावित किया है। वे बताती हैं, ''उदयपुर झीलों का शहर है। उसके कई रंगों ने उन्हें प्रभावित किया। उनके अपने ही आंगन में हरा गुलमोहर का पेड़ है जिसे वे बचपन से देखती आ रही हैं। गर्मी में उसके लाल-लाल फूल और उनके साथ विविध रंगों की झांई ने सदैव उन्हें आकर्षित किया है। इस एक पेड़ में ही कई चटकीले रंगों का प्रभाव देख उन्हें यह प्रकृति अनेक अनन्य रहस्यों का भंडारण लगती है और विविध सरोवरी लहरों की तरह एक-के-ऊपर-एक रंगों की परत आंखों को शांति देती है। रंग वे ही हैं पर एप्लीकेशन बदल जाता है। कलाकार अपने अनुभव के हिसाब से, उम्र के अलग-अलग पड़ाव में उन रंगों से अपनी मर्जी से उनका चयन कर एक नई सृष्टि-शैली अवतरित करता है तब लगता है मनुष्य का जीवन और कला का जीवन अलग-अलग नहीं होकर भीतरी संवेदनशीलता का संश्लिष्ट प्रभाव लिए रहता है। तब कठोरता का अंकन भी कोमलता के रंग-ब्रश में लमछराने लगता है।

आकाश के अनंत तारों की तरह डॉ. मीना ने कैनवास के अलावा पेपर और जमीन पर अनंत मांडणें मांडे हैं। ये मांडणें कहीं किसी से सीखे नहीं हैं। अनेक जगह उन मांडणों को अपनी चित्रकारी में बैकग्राउंड की तरह लिया है। उन्होंने सूखे रंगों की, फूलों की अनेक रंगोलियां बनाई हैं। मिनिएचर भी सीखा। मास्क भी बनाए। पेपरमेशी और लकड़ी पर भी प्रयोग किए। ऑयल कलर उन्हें अभी भी अच्छा लगता है। उसमें मिक्सिंग अच्छा आता है। एक्रेलिक कलर क्विक रिजल्ट देता है। ज्यादातर चित्र उड़ते हुए, लयबद्ध और सपनों की दुनिया में ले जाने वाले होते हैं। ये कॉर्नर और सेंटर में उन्हें अधिक प्रिय लगते हैं। रंगों में लाल, हरा ,नीला, सफेद और इनके शेड्स ने उन्हें सदा ही आकर्षित किया है। यही सब उनके द्वारा निर्मित चित्रों के साक्षी और हमदर्द बने हुए हैं।

डॉ. मीना बया उदयपुर के राजकीय मीरां कन्या महाविद्यालय के प्रिंसिपल पद को सुशोभित करते यह गर्व महसूस करती हैं कि इसी महाविद्यालय की छात्रा के रूप में अध्ययन-अध्यापन कर इसी की छत्रछाया में निरंतर अपनी सृजनयात्रा में चार चांद लगा रही हैं। हाल ही में राजस्थान में पहलीबार अपने महाविद्यालय के आंगन में 'कबाड़े से कंचन' के रूप में देश के ख्यातलब्ध कलाकारों द्वारा जो शिल्प-कलाकृतियां निर्मित कराई गईं वे लंबे समय तक कॉलेज का कलात्मक सौंदर्य बढ़ाती रहेंगी ।

सच तो यह है कि डॉ. मीना बया बहुमुखी प्रतिभा लिए कला-संस्कृति के अनेक संस्कारों से संस्कारित होकर अपने स्व को स्वयं निर्मित करते अनेक पुरस्कारों से नवाजी गई हैं। उनकी झोली में आजादी के अमृत महोत्सव पर राज्य के पुरातन विभाग, कला-साहित्य एवं भाषा अकादमियों ने 31 मार्च 2022 को न केवल संस्कृति संवर्धन सम्मान से नवाजा अपितु राजस्थान ललित कला अकादमी ने तो 1998, 2015 एवं 2020 में उनकी सृजनात्मक कृतियों को पुरस्कृत कर स्वयं को ही गौरवान्वित किया है।

लेखिका- चित्रकला विभाग राजकीय मीरां कन्या महाविद्यालय, उदयपुर हैं।
संपर्क: निवास: 16, वृन्दावन धाम, गली न. 2,न्यू भूपालपुरा,
उदयपुर-313001 मो. 9460352480

कला में नग्नता - दृश्य में अथवा दृष्टि में!

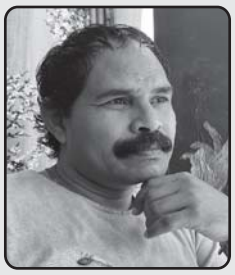

चेतन औदिच्य

'कौनसी आत्मा इतनी खाली और अंधी है कि यह इस तथ्य को नहीं पहचान सकती कि पैर जूते से अधिक महान है और त्वचा उसके पहने हुए वस्त्र से अधिक सुन्दर है !'

- माइकल ऐंजेलो

माइकल ऐंजेलो का यह कथन कलाकार की उस यात्रा को बड़ा सम्बल है जो किसी 'रूप' के मूल 'सौन्दर्य' को ढूंढने निकला है। कलाकार एक यात्री है। उसकी सृजन यात्रा अविराम होती है। यह जानकर हैरानी होगी कि कोई कलाकार यदि कृति बनाता है तो उस कृति के बन जाने के बाद भी उसकी मनोस्थिति वहाँ ठहरी नहीं रहती, बल्कि वो कृति के 'सत्य' को अनावृत करने की यात्रा में चलती ही रहती है। यह भी रोचक बात है कि किसी भी कलाकार को अपनी कृति पूर्ण नहीं लगती। कृति के बन जाने के बाद भी उसे लगता रहता है, कि यह एक विराम मात्र है, इसमें कुछ जुड़ना या घटना बाक़ी है। जबकि दूसरी तरफ कृति अपने निर्माण के चरणों में दर्शक के लिए एकाधिक बार पूरी हो चुकी होती है। अर्थात कृति के निर्माण के दौरान अनेक बार ऐसा लगता है कि यह पूरी बन गई है। अब कुछ करने की जरूरत नहीं है। जबकि कलाकार उस पर काम किए जाता है। असल में कलाकार और दर्शक एक ही रेखा के दो अलग-अलग सिरों पर होते हैं। हां जब कलाकार दर्शक के रूप में अपनी कृति को देख रहा होता है तो वह दूसरे सिरे पर आ जाता है। इसी सिरे पर आकर वह निर्णय लेता है कि कृति पूरी हो गई है।

इस तरह कला से संबंधित मोटा-मोटी दो पक्ष सामने आते हैं । एक कृति और दूसरा दृष्टा । एक बनाने वाला कलाकार और एक देखने वाला दर्शक। अब हम कृतियों और देखने वाले दर्शक समाज की बात करें तो हजारों सालों के इतिहास में यह कभी देखने में नहीं आया कि मंदिरों के शिल्प में आई वस्त्र विहीन मिथुन मूर्तियों का किसी समाज ने विरोध किया हो। विभिन्न रियासतों में पोषित हुई शैलियों -- बसोहली,कांगड़ा , गूलर,ढूंढाड़ी, मारवाड़ी आदि में में बने स्त्री पुरुष के नग्न चित्रों अथवा दक्षिण की द्राविड़ या बेसर शैली में बने विवस्त्र मूर्ति शिल्पों के विरुद्ध कहीं प्रदर्शन हुआ हो ऐसा दिखाई नहीं देता। यूरोप में भी रैनेसा से पहले और बाद में सैंकड़ों विवस्त्र चित्रों के बनने के बावजूद ऐसे उदाहरण नहीं मिलते कि नग्न होने के कारण उस पर कालिख पोत दी गई हो। हम मानव सभ्यता के आरंभिक विकास से लगाकर आज के उत्तर आधुनिक युग तक यदि नग्न कलाकृतियों पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि वस्त्रहीन स्त्री - पुरुष शरीर की स्वीकृति मानव समाज ने हमेशा ही दी है । यदि कहीं विरोध हुआ है तो उसका बड़ा कारण कुछ और है। कला संदर्भ नहीं ।

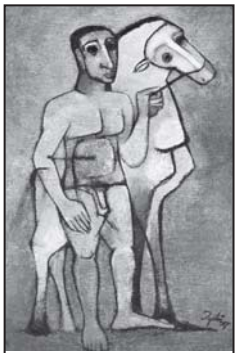

1957 में बनी तैयब मेहता की पेंटिंग। साभार गूगल

निज़ामाबाद, तेलंगाना के रामालयम खिल्ल मंदिर में 14 वीं शताब्दी का मूर्ति शिल्प

हम औरंगजेब का उदाहरण ले सकते हैं। उसने मूर्तियों को नष्ट करने का आदेश दिया था । संगीत और कला पर पाबंदी लगा दी थी । यहां तक कि कलाकारों और संगीतकारों को अपने राज्य से बाहर जाने को विवश कर दिया । उस समय भारत यात्रा पर आए इटली के यात्री मनूची ने अपनी डायरी में लिखा है कि औरंगजेब की इस पाबंदी के विरोध में कलाकारों ने अलग अंदाज में विरोध जताया था । एक हजार से अधिक संगीतकार दिल्ली की जामा मस्जिद पहुंचे और वहां से जुलूस के रूप में दिल्ली की सड़कों पर निकले । कलाकारों ने बेसुरी आवाज में गाना और रोना शुरु किया। ठीक उसी समय नमाज से वापस लौटते हुए औरंगजेब ने जब इन बेसुरी आवाजों को सुना तो पूछा कि ये बेसुरी आवाजें क्या आ रही है ? तो कलाकारों की ओर से जवाब आया कि बादशाह ने संगीत का क़त्ल कर दिया है । उसी कत्ल किए गए संगीत का जनाजा निकाला जा रहा है। हम उसे दफनाने जा रहे हैं। तो औरंगजेब ने जवाब दिया ''अच्छा ! इस संगीत को इतना गहरा दफनाना कि फिर कभी इसकी आवाज बाहर नहीं आ सके। वास्तविकता यह है कि औरंगजेब ने अपने भाइयों की हत्या करके तथा अपने पिता को जेल में डाल कर साम्राज्य पर अधिकार किया था और उसके राज्यारोहण को धार्मिक मौलानाओं तथा उलेमाओं ने सही ठहराया था। अब औरंगजेब इस्लाम में निषिद्ध किए गए किसी भी कृत्य द्वारा उलेमाओं को नाराज नहीं करना चाहता था । इसीलिए उसने संगीत और कला पर पाबंदी लगाई थी । जबकि औरंगजेब स्वयं अच्छा वीणा

कोलकाता की समकालीन मूर्तिकार मंजुश्री चक्रवर्ती की सेरेमिक में बनी कृति

वादक था तथा खाली समय में अपने कक्ष में वीणा बजाया करता था । तो बात यह है कि कुछ लोगों को 'कला' की वास्तविकता से कोई लेना-देना नहीं है। वे विवस्त्र कृतियों का इसलिए विरोध करते हैं कि स्वयं को अथवा अपने संस्थागत स्वरूप को चमका सके।

हम कला के गहरे संदर्भों सहित कलाकृति में आए स्त्री-पुरुष के विवस्त्र शरीर की बात कर रहे हैं। हमें यह समझना होगा कि नग्नता और अश्लीलता में भारी अंतर है। अश्लील दृश्य का सबसे बड़ा उद्देश्य कामुकता प्रसारित करना है। जिसका किंचित सामाजिक परिणाम व्याभिचार फैलना है। जबकि नग्न कृतियों के साथ ऐसा नहीं है। मंदिर की दीवारों पर रचित रति चित्र कामुक उद्दीपन नही अपितु शरीर की क्रिया रचना की कलात्मक श्रेष्ठता देखने के लिए मन को प्रक्षेपित करते हैं। इसका गहरा आध्यात्मिक मंतव्य काम ऊर्जा का ऊर्ध्वगामी रूपांतरण करना है। देखने वाले का चित्त वासना के घेरे से बाहर निकल कर किसी विशुद्ध तल पर पहुंचे यही ध्येय है। कि वह सर्वथा विशुद्ध मन से परम् सत्ता से जुड़ सके।

लंदन के एलेक्जेड्रा पैलेस पर दो सौ बीस लोगों द्वारा स्काए आर्ट के लिए कोरोना काल में किया गया इंस्टालेशन

प्रश्न यह उठता है कि कलाकार आखिर नग्न कृतियां बनाता ही क्यों है? कलाकार किस मनोविज्ञान के कारण यह ध्यान नहीं देता कि वह जो बना रहा है वे वस्त्र विहीन शरीर रचनाएं हैं? उसकी कृतियां शुचिता-अशुचिता का सवाल क्यों बन जाती है? कृति श्लील है या अश्लील इसका निर्णय कौन करे? क्या कृति के श्लील या अश्लील होने के बीच कोई विभाजक रेखा है? अनेकानेक प्रश्न हैं। हम इनके सामाजिक मनोवैज्ञानिक पक्षों की बजाय कलात्मक पक्ष पर बात करेंगे तो संभव है ठीक ठीक जवाबों की ओर बढ़ पाएं।

कला अपने मूल स्वरूप में आद्य-बिंबों की भांति बिना किसी आवरण के विशुद्ध सौंदर्यात्मक स्थिति है। कलाकार इसी आद्य- बिंब की खोज में बढ़ते हुए शरीर पर पहुंचता है तथा शरीर की प्राकृत अवस्था को प्राप्त करता है।

कला में नग्नता का प्रश्न विशुद्ध सौंदर्य का प्रश्न है जो कलाकार की सौंदर्य अनुभूति और संस्कारों से जुड़ा है। इसका समाज सापेक्ष अश्लीलता से कोई संबंध नहीं है। यदि ऐसा दिखाई देता है तो वह कला का पक्ष नहीं होकर अन्य तत्वों से संबंधों का प्रश्न है जिसकी ठीक ठीक पड़ताल होनी शेष है।

सर्जना के क्षण नैतिकता-अनैतिकता से निरपेक्ष होते हैं । अर्थात कलाकार कृति रचते समय यह नहीं सोच रहा होता है कि उसकी बनाई कृति समाज के लिए हितकर है अथवा अहितकर। वस्तुत: कलाकार इंद्रियानुभूति के मनो-शरीर संबंध के संस्कारों के अधीन होकर ही अपनी कृति रचना में रत रहता है। उसकी कला यात्रा की अथवा कृति के पूर्ण हो जाने की अंतिम परिणीति भी नैतिक अनैतिक निर्णयों से निरपेक्ष होती है ।

समकालीन कलाकार विनय त्रिवेदी की ड्राइंग

यदि मैं वहीं देख रहा हूं, जो मैं देख रहा हूं, तो मैं क्या देख रहा हूं? उत्तर है - कुछ नहीं। कलाकार वह देख रहा है जो मैं नहीं देख रहा। मैं तो बस वही देख रहा हूं जिसे देखने का मैं अभ्यस्त हूं। कलाकार उस अभ्यस्त देखने के 'बाहर' को देख रहा है। नग्न कृति को देखने के दौरान दर्शक पर अनायास नैतिकता-अनैतिकता, श्लील-अश्लील, सामाजिक -असामाजिक आदि आदि अनेक प्रकार के चश्मे चढ़ जाते हैं। जिसके फलस्वरूप कृति के संबंध में उसके एकांगी निर्णय सामने आते हैं। जबकि जो दर्शक इन आग्रहों से जितना मुक्त होता जाता है वह उतना ही कृति के स्वरूप का आस्वाद कर पाता है। मंदिर की दीवार पर बने रति चित्र इसीलिए हमें उद्वेलित नहीं करते हैं, क्योंकि हम ज्यादातर उस परिसर और वातावरण में ऊपर उल्लिखित आग्रहों से न्यूनाधिक मुक्त होते हैं ।

नग्नता निर्मिति की अंतिम सीढ़ी है, निरा प्राकृत सौंदर्य। कलाकार अपनी रचना के लिए इसी सौंदर्य से अपनी सामग्री लेता है।

यक़ीन कीजिए विश्व के किसी भी कलाकार का सामाजिक नैतिकता को खंडित करने में कोई हाथ नहीं है। **शेष अगले लेख में...**।

शुभमस्तु।

स्तंभकार लेखक - वरिष्ठ चित्रकार और कवि हैं।
संपर्क : 49-सी, जनता मार्ग, सूरजपोल अंदर, उदयपुर-313001 (राज.),
मो.: 9602015389

■

आलेख

कवि-कविता और समय

सदाशिव कौतुक

कविता या कविता की किसी भी विधा की बात करें तो श्रेष्ठ साहित्य रचने वालों को छोड़ दें तो मेरा मानना है कि शायरी या कविता की समझ बड़ी देर से आती है। मैं तो यही कहूँगा कि ''अभी-अभी तुम खिले हो, झड़ना और खिलना अभी और बाकी है। फूल से इत्र निकालना अभी और बाकी है।'' जब स्थिति जिंदगी के मंच पर पर्दा गिरने के करीब आती है, तब कहीं कविता की समझ ठीक से आ पाती है। यह मसला आसान नहीं है। यह बड़ा गंभीर मसला है। सही कहूँ तो कई लोग इस गलत फहमीं में जी रहे हैं। हमारे मस्तिष्क में विराट अकल्पनीय उर्जा है। जिसमें सृजन ही सृजन है। जहाँ सृजन नहीं वहाँ विनाश है, जहाँ सर्जन नहीं वहाँ मन का क्षरण होने लगता है, मुरझा जाता है, बिखर जाता है। ऐसा लगता है विचार का अवसान हो गया है। शब्द केवल संप्रेषण का माध्यम है। नए-नए विचारों की तलाश जारी रखना चाहिए जिससे सक्रियता बढ़ती है, प्रसन्नता बढ़ती है और कुछ नया कर देने का भाव मन और मस्तिष्क को आनंदित कर देता है।

सामने की चकाचौंध के पार देखना जिसे हम तीसरी आँख से देखना कहते हैं जब तक कवि में या लेखक में यह कूबत नहीं आती तब तक लेखन में सार्थकता नहीं आ सकती। यह नियति लम्बी प्रक्रिया के बाद ही आ पाती है। यह भी सच है कि किसी को यह अनुभूति प्रथम सोपान पर हो सकती है, पर वह उसका प्रथम-सोपान नहीं है वह या तो बहुत कम समय में गहन अनुभवों से गुजर चुका होता है। तब प्रथम सोपान में ही परिपक्वता के किनारे पर आ गया है। कभी ऐसा भी होता है कि उसकी बूँद में स्वाति की बूँद कौन सी है यह स्वयं बादल को भी पता नहीं होता है कि स्वाति की बूँद कौन सी है। कभी स्वयं साहित्यकार को पता नहीं होता कि कौन सी अनुभूति की अभिव्यक्ति स्वाति की बूँद सा प्रभाव छोड़ गई होती है। किसी भी कविता में कन्टेंट महत्वपूर्ण होता है लेकिन कोई भी कविता केवल कन्टेंट बेहतर हो जाने से उत्कृष्ट कविता नहीं हो जाती। कन्टेंट तो गद्य में भी होता है और कविता नीरा गद्य नहीं होती। सूक्ष्मता-सौन्दर्य-शिल्प और संरचना के बिना कोई कविता नहीं हो सकती। उसमें कुछ नया होना चाहिए जो अब तक न कहा गया हो या कहने का ढंग अभूतपूर्व होना चाहिए।

अप्रत्याशिता पाठक को चौंकाती है और आनन्दित भी करती है। मनुष्यता के बड़े सच को व्यक्त करने के लिए कविता को अपने समय के कठिन दौरों में जाने और उनका अतिक्रमण करने की जरूरत है। यही बात है जो किसी भी कविता को अपने समय से मुक्त कर कालजयी बनाती है। नफरत हत्या-असहिष्णुता जड़ता अतिमोह और अन्ध विश्वसनीयता का घटाटोप आज जितना है उतना शायद ही कभी आदिम समय में रहा होगा। इस ओर ध्यान देकर लिखना ही कालजयी होगा और कविता लिखने की प्रासंगिकता होगी।

कविता के कई आकाश और कई धरती हैं। जो मुकाम आपको उचित लगे उस पर डेरा डाल दो। रूढ़ीवादी या अंधविश्वासी बातों के पक्ष में कविता लिखना बंद कर देना चाहिए क्योंकि सृष्टी के रहस्यों को विज्ञान खोल चुका है। विज्ञान ने कई भ्रम जालों को तोड़ दिया है। ऐसे भ्रमों में जीना या लिखना कवि की सोच की ओर आकृष्ट करता है। आज जीवन जीने की शैली बदल चुकी है। युद्ध के हथियार बदल गए हैं। खान-पान रहन-सहन बदल चुका है। तौर तरीके बदल चुके हैं, तो कविता ने क्यों नहीं बदलना चाहिए क्योंकि दुनिया की सबसे अच्छी कविता तो हम ही हैं हम जो देखते हैं, ग्रहण करते हैं वर्तमान के बारे में सोचते हैं, तो वही बात कविता में क्यों नहीं आनी चाहिए। कविता जीवन का लेखा-जोखा ही तो है।

कवि या साहित्यकार समय-समाज और सत्ता की नब्ज टटोलता है। नब्ज टटोलने से ही मर्ज का पता लगता है या साहित्य जाँच की लेबोरेटरी होती है, जो बताती है कि शरीर स्वस्थ है या अस्वस्थ। कवि का अपने युग से प्राण सम्बन्ध रहता है। कवि-समाज सापेक्ष चिंतन मनन कर युगीन बोध के प्रति जागरूक रहता है। युगबोध से कोई भी कवि अछूता नहीं रह सकता। जहाँ कल्पना और विचारों का तालमेल होता है वहीं कविता जन्म लेती है। जब एक कवि अपने समय के परिवेश शब्द और उसके अर्थ के साथ, समष्टि चेतना के साथ चलता है, तो उसका साहित्य जन जीवन का आधार एवं सहारा बन जाता है। हिन्दी में कविता आज भी साहित्य की केन्द्रीय विधा इसलिए बनी हुई है कि हिन्दी का समाज अब भी जनपदीय समाज है, जिसे हम हिन्दी संस्कृति कहते हैं। महानगरों में भी कविता वहाँ बची है। जहाँ जनपदीय चेतना मरी नहीं है।

हर कवि की कोई न कोई विचारधारा होती है। कवि किस तरह का समाज बनाना चाहता है और अपनी कविता में किसका पक्षधर है, विचार धारा हमें इन सब का संज्ञान कवि लोक और सर्वहारा का पक्षधर है, तो उसे मार्क्स के सिद्धान्त पर चलना ही होगा। विचारधारा को कवि की रगों में रक्त की तरह प्रभावित होते रहना चाहिए। एक आचरण और व्यवहार से गिरा हुआ आदमी कभी उत्कृष्ट कवि नहीं हो सकता है, उसे कवि या रचनाकार होने के पहले नेक इन्सान होना जरूरी है। वर्तमान भी कवित्व सोच के बारे में ऐसा लगता है कि मानव बोध धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा है। पहले के लेखन और सृजन में समूची सृष्टी का जो पारस्परिक आलाप रहा करता था अब वह प्राय: दुर्लभ हो गया है। सच तो यह है कि हमारे अति सत्यतावाद ने हमारे जीवन बोध को गड़बड़ा कर रख दिया है। भारत का उच्च, उच्चमध्यम और मध्यम वर्ग इस मायने में सबसे आगे है क्योंकि आज उसकी अपनी देशी पहचान बची नहीं है। आज एक ऐसा सांस्कृतिक शोर है जिसमें बुनियादी सवाल और उनके क्रान्तिकारी जवाबों की चिंता छदम दब गई है।

कविता के माध्यम से आत्मीय संबंध होना चाहिए क्योंकि कविता आत्मानुसंधान का माध्यम होती है। संवेदना के भिन्न आयाम कविता के केन्द्र में होना चाहिए। कवि-शब्द-नाद- संगीत-देह मुद्राओं और रंग रेखाओं सहित विभिन्न कला रूपों के माध्यम से अनुभव जगत को भाव जगत में रूपान्तरित कर कल्पना को आकार और व्याप्ति देता है। कवि प्रकृति के स्पंदन में मनुष्य की संवेदना का अन्वेषक और सर्जक होता है। कविता का जन्म किसी पुष्प के खिलौने जैसा प्रतीत होता है। कविता हो या पुष्प दोनों ही अपनी आत्मा की सुगंध में जीवन को आनन्दमय कर देते हैं। गहरी संवेदना के बिना कविता को अनुभव करना असंभव लगता है। कविता समकाल के आनन्द और दुख के आर्तनाद की प्रतिनिधियों को प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास है। कविता में हमें आने वाले क्षण की आहट, खतरे एंव कई संकेतों को समझना होगा। वास्तव में ये मनुष्य की नाना प्रकार की प्रवृत्तियों की प्रतिध्वनियाँ हैं। सिद्ध कविता वेदना और आनन्द से हृदय को संवेदित करती है। कविता वह नदी है, जिसका प्रवाह विभिन्न रूपों में निरंतर हमारे भीतर बना रहता है। एक विशिष्ट भावदशा में शब्दों के साथ विचार का रेला आता है और चला भी जाता है। विधाता की भाँति कवि भी प्रकृति की शब्द सृष्टि करता है। मन में काव्य भावोदय घटना वह क्षण है, जो कविता के अवतरण का कारण बनती है। माना कि सच्चे कवि में काव्य संवेदना तो नैसर्गिक या जन्मजात होती हो, जिसके कारण वह काव्याभिव्यक्ति के लिए प्रेरित होता है परंतु अपनी अभिव्यक्ति कलात्मक या प्रभावी तकनीक रूप से भी काव्य एक कला है। उसका कौशल अन्य कलाओं की तरह नियमित अभ्यास से अर्जित किया जा सकता है।

कवि का लक्ष्य केवल महफिल सजाना या मनोरंजन का साधन जुटाना नहीं है। कविता का दर्जा इतना भी नहीं गिरना चाहिए कि वह कोरी मज़ाक बन कर रह जाए। कविता देश भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं है बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। सही माने में हमारी कसौटी पर वही कविता खरी उतरेगी जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाई का प्रकाश हो, जो मनुष्य में गति और बैचेनी पैदा करे। कविता कोरे मनोरंजन में समाज को डुबाए नहीं। हमें अन्याय और विसंगतियों की तह में जाना होगा। कवि देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार या कवि के लिए अविचलित होना संभव नहीं है। कविता उतनी आसान विधा नही है जितनी कुछ लोग समझ लेते हैं। कलम की कुदाली से गहरा खनन करना पड़ता है तब बहुत अंदर जाने के बाद ही हीरा प्राप्त होता है। उसे भी बादत में कई तरीकों से तराशना पड़ता है, तब कहीं हीरा चमकदार बनता है अर्थात् कविता में वह बात आ पाती है, विचार करें तो ऊपर से ही आता है फिर हम उसे माँजते हैं क्योंकि जब लकड़ी ही नहीं होगी तो रंदा चलाकर चमक-डिजाइन और खूबसूरती कहाँ से लाएँगे, किस पर लाएँगे ? मन की दहकती आग पर विचारों को सेंकना पड़ता है तब कविता 24 कैरेट की होती है।

- लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
संपर्क : श्रमफल, 1520-सुदामा नगर, इंदौर-09
मो. 98930-34149

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ ` 150/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

आलेख

वसंत, व्रज और वंशीधर श्रीकृष्ण

-डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

माघ मास का आगमन ऐसे समय होता है जब न तो अधिक सर्दी होती है और न अधिक गर्मी। मौसम शीतोष्ण रहता है। सर्दी का प्रकोप लगभग शांत-सा हो चुका होता है। यह प्रकृति के शयन से जागरण का समय होता है। यही कारण है कि षट् ऋतुओं में सर्वाधिक मनभावन वसंत ऋतु को ही ऋतुराज की संज्ञा प्रदान की गई है। भगवान् श्रीकृष्ण तो

'ऋतुनाम कुसुमाकरः' (श्रीमद्भगवद्गीता 10-35)

'ऋतुओं में मैं वसंत ऋतु हूं' कहते हुए वसंत ऋतु को सभी ऋतुओं में सर्वाधिक महत्ता प्रदान करते हैं। माघ शुक्ल पंचमी, जिसे वसंत पंचमी अथवा श्री पंचमी भी कहते हैं, को शीत ऋतु को भावभीनी विदाई दे वसंत धरती पर उतरता है, एक नई उमंग लेकर। कामदेव के घर पुत्र -जन्म के कारण भी हर ओर राग और रंग बरसता दिखता है। शब्दों के चितेरे कवियों और सुरों से शब्दों में रंग भर देने वाले संगीतज्ञों को तो यह ऋतु अत्यंत ही प्रिय है। संगीत में 'वसंत' या 'बसंत' नामक एक अत्यंत प्रिय राग भी होता है, जो वसंत ऋतु में तो हर समय मंदिरों और देवालयों सहित व्रज के संगीत-रसिकों के घर-घर में सुनाई पड़ जाता है। रंगों में भी बसंती रंग का अपना अलग ही महत्त्व है। प्रकृति में भी चहुं ओर वासंती छटा छाई दिखाई पड़ती है। उत्साह से भरपूर यह रंग हमारे जवानों तक में ऐसा वीरत्त्व - भाव जगा देता है कि वे भी अपने चोले को बसंती रंग में रंगने को लालायित हो उठते हैं। वसंत ऋतु आते ही चहुं ओर खेतों में सरसों ऐसे लहलहाती दिखती है मानों उसने धरा को अपने धानी आंचल से ढंक लिया हो। धरा का ऐसा अनुपम सौंदर्य निहार भोले-भाले ब्रजवासी भी बरबस ही गा उठते हैं -

सरसों फूली रे खेतन में,
छाई आज बसंत बहार।।

शास्त्रीय संगीतज्ञों के द्वारा भी कुछ ऐसे ही खयाल वातावरण में इस प्रकार गुंजायमान होने लग जाते हैं। यथा -

आई आई ऋतु वसंत,
सुषमा बिखरी अनंत।
अति सुगंध बहत पवन,
जन-मन सुखदाई।।

कुंज-कुंज कोयलिया,
कुहुक-कुहुक रस घोले।
कुसुम-कुसुम पर भंवरा,
गुन-गुन-गुन बोले।।

अथवा

कोयल बोले अमुवा की डार।
पंचम सुर से बार-बार।।
वन-वन विकसित, कलियन - कलियन।
कुसुम-कुसुम पर, मत्त मधुपगन।
ऋतु वसन्त की, छाई बहार।।

इस प्रकार वसंत के आगमन की यह उमंग जन-मानस के साथ-साथ पशु-पक्षियों तथा कीट-पतंगों तक को मदोन्मत्त कर देती है।

वसंत पंचमी के दिन साहित्य, संगीत और कला की अधिष्ठात्री मां सरस्वती की पूजा के साथ-साथ भगवान् लक्ष्मीनारायण और कामदेव की पूजा भी की जाती है। भले ही इस दिन ऋतु-पूजा, रति-पूजा, प्रकृति-पूजा, देव-पूजा और वेद-पूजा का भी विशेष महत्त्व है; किंतु समूचा व्रज-मंडल तो अपने परमाराध्य श्रीकृष्ण की भक्ति में ही अधिक डूबा दिखलाई पड़ता है। कारण, व्रज-संस्कृति बिना कृष्ण के अधूरी ही है। यहां के कण-कण में श्रीकृष्ण का वास है; अतः हर ब्रजवासी इन पर लुट जाना चाहता है। वह अपना तन-मन-धन और जोवन तक वारने को लालायित हो उठता है। इस दिन अपने आराध्य को सरसों और आम्र-पुष्प समर्पित कर अपने को धन्य मानता है हर ब्रजवासी। सभी कृष्ण - मंदिर बसंती और पीले पुष्पों से तथा ठाकुर जी के श्री विग्रह बसंती रंग की पोशाकों से सुसज्जित किए जाते हैं। यत्र-तत्र-सर्वत्र बसंती एवं पीत-वर्ण ही दिखलाई देता है और इस वासंती छटा को निहार ब्रजवासी गा उठते हैं -

श्यामाश्याम सलौनी सूरत कौ श्रृंगार बसन्ती है।
श्रृंगार बसंती है,
अरे! श्रृंगार बसंती है।।

वसंत के बाद ठाकुर जी को सादे श्वेत वस्त्र धारण कराए जाते हैं। कारण, इसी दिन से होली का त्यौहार भी प्रारंभ हो जाता है। यदि वस्त्र रंगीन होंगे तो फिर होली के रंगों की सतरंगी छटा कैसे बिखरेगी! व्रज में होली का डांढ़ा भी वसंत पंचमी के दिन ही गाड़ दिया जाता है। इस दिन बसंती मीठा या नमकीन चावल, केसर हलवा, खीर, तिल की रेबड़ी और बेर आदि का भोग भगवान् के सम्मुख पधराया जाता है। मथुरा में यमुना पर दुर्वासा ऋषि का बहुत बड़ा मेला लगता है। श्री कृष्ण जन्मस्थान में भी बसंती कमरा सजाया जाता है। श्री द्वारकाधीश मंदिर में वसंत पंचमी के दिन अबीर-गुलाल और चंदन से भगवान् को होली खिलाई जाती है। इस दिन वृंदावन के शाह जी के मंदिर का विश्व प्रसिद्ध बसंती कमरा भी दर्शनार्थियों के लिए खोल दिया जाता है जिसकी अद्भुत छटा देखते ही बनती है। विश्व प्रसिद्ध श्री बांके बिहारी जी के मंदिर में भी वसंत पंचमी से ही होली की धूम मचने लग जाती है। श्री राधा वल्लभ, राधा दामोदर, सेवाकुंज और यशोदानंदन आदि मंदिरों में वसंत पंचमी के दिन से ही फागोत्सव प्रारंभ हो जाता है। मंदिरों और देवालयों में गाई जाने वाली समाजों में वसंत और होली की धमारों की धमक यहाँ के वातावरण को

रसमय बना देती है। नंदगांव के नंद बाबा मंदिर और बरसाना के लाड़ली जी के मंदिरों में समाज-गायन हेतु समाजें बैठ जाती हैं। गोवर्धन और जतीपुरा के मंदिरों में भी वसंत पंचमी की छटा दर्शनीय होती है। अर्थात् समस्त व्रज-मंडल ही कृष्ण - भक्ति के साथ बसंती रँग में रँगने लग जाता है।

ब्रजवासी अपने परम् आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति यूं ही आकृष्ट नहीं हैं, वह तो हैं ही ऐसे कि जो एक बार उनको भूल से भी दृष्टि भरकर देख ले तो वह उसके हृदय में समा जाते हैं और फिर त्रिभंगी (तीन स्थानों से टेढ़े) हो जाते हैं; चाहकर भी कोई उन्हें हृदय से बाहर नहीं निकाल सकता।

अद्वैतवादी आचार्य भक्तप्रवर श्री मधुसूदन सरस्वती जी जैसे महा ज्ञानी कृष्ण - रंग में रंगकर अपनी ऐसी दशा कर लेते हैं कि उन्हें फिर कोई दूसरा तत्त्व सूझता ही नहीं और कह उठते हैं कि -

वंशी विभूषित करान्नवनीरदाभात्,
पीतांबरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दु सुन्दर मुखादरविंद नेत्रात्,
कृष्णात्परंकिमपि तत्त्वमहं न जाने।।

फिर साधारण भक्त - जन की तो बात ही क्या कहें!

ब्रज-रस-रसिक भक्तप्रवर ललितकिशोरी जी भी तो उस छलिया चितचोर के लिए ऐसा ही कुछ कहते हैं। यथा -

देखो री, यह नंद का छोरा,
बरछी मारे जाता है।
बरछी-सी तिरछी चितवन की,
पैनी छुरी चलाता है।।
हमको घायल देख बेदरदी,
मंद-मंद मुसकाता है।
'ललितकिसोरी' जखम जिगर पे,
नौनपुरी बुरकाता है।।

व्रज में वसंत के आते ही जो स्वर-लहरियां वातावरण में गुंजायमान होती हैं, उनका आनंद तो ब्रजवासी ही ले सकते हैं। वैसे संगीत के रसज्ञों के लिए तो सम्पूर्ण भारतवर्ष ही व्रज हो जाता है। हर कंठ से केवल और केवल उल्लास के स्वर ही फूटते सुनाई पड़ते हैं। सूरदास जी के शब्दों में गोप-वधुएँ वसन्त आते ही नन्द के द्वार पहुँच गा उठती हैं -

आई हम नंद के द्वारे।
खेलत फाग वसंत पंचमी, सुख- समाज विचारे।।
कोउ लै अबीर, कुमकुमा, केसर,
काहू के मुख पर डारे।
कोऊ अबीर - गुलाल उड़ावे,
आनंद तन न सम्हारे।।
मोहन कों गोपी निरखत सब,
नीके वदन निहारे।
चितवन में सब ही बस कीन्हीं,
नागर नंद दुलारे।।
ताल, मृदंग, मुरली, ढप बाजे,
झांझन की झंकारे।
'सूरदास' प्रभु रीझ मगन भए,
गोप-वधू तन वारे।।

किंतु जिसका प्रियतम (श्रीकृष्ण) वसंत के आगमन तक भी घर नहीं लौट सका है, उसके कंठ से तो उल्लास के स्वर नहीं,बल्कि विरह के स्वर ही फूटेंगे। ऐसी नायिका (गोपिका) को तो धमार का आनन्द भी फीका लगना स्वाभाविक ही है। यथा -

कैसौ फाग ब्रज में आज।
जब नहिं श्याम ही सँग आलि।।
गवन कीन्हों श्याम मथुरा।
विरह-व्याकुल गोपि-ग्वालन।
छांड़ गए ब्रजराज।।

श्रीकृष्ण के प्रेम में डूबी संत मीराबाई के भी एक पद में वसंत के आगमन तक भी कंत के न आने की पीड़ा दृष्टव्य है। यहां मीरा अपने कन्त बेनी माधव के विरह में गा उठती हैं -

होली पिया बिन लागे खारी।
सुनो री सखी मेरी प्यारी।।
बाजत ताल, मृदंग, मुरलिया।
बाज रही एकतारी।
आयौ वसंत कन्त घर नाहीं,
तन में जरनवा भारी।
श्याम मन कहा बिचारी।।

ठुमरी आदि विधाओं में भी वसंत और होली के वर्णन प्रचुर मात्रा में सुने जा सकते हैं। जहां तक वसंत या होली गीतों की बात है, उनमें भक्ति या श्रृंगार प्रधान गीतों का ही प्राधान्य अधिक रहता है। श्रृंगार में भी संयोग श्रृंगार की प्रधानता अधिक रहती है। वियोग या विप्रलम्भ श्रृंगार की रचनाएं भूले-बिसरे ही मिलती हैं अथवा कम मिलती हैं।

व्रज के लोक-संगीत में भी वसंत और होली के असंख्य गीत जन-जन के कंठ में समाए हुए हैं। इन गीतों में एक ओर प्रकृति की मनोरम झांकियां दिखाई पड़ती हैं तो दूसरी ओर वासंती रंग में रंगे कृष्ण-भक्ति के विविध रूप।

वसंत, व्रज और श्रीकृष्ण की बात बिना पारासौली की चर्चा अधूरी ही मानी जाएगी क्योंकि तात्त्विक दृष्टि से वसंत, व्रज और श्रीकृष्ण को एकसाथ यदि कहीं खोजा जा सकता है तो यही एकमात्र दिव्य स्थान है किंतु आम - जन की दृष्टि से यह अभी ओझल ही है।

गोवर्धन से लगभग 3 किलोमीटर दूर सौंख रोड पर अग्नि कोण में परासौली या पारासौली ग्राम स्थित है जहां भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी वसंत ऋतु में पूर्णिमा की रात्रि श्रीराधे रानी एवं गोपियों के साथ जो महारास रचाया था, उसे वासन्ती महारास के नाम से जाना जाता है। कहते हैं कि यह महारास ब्रह्माजी की एक रात्रि जितनी दीर्घ अवधि तक चला था और चंद्र देव भी इतने लंबे समय तक आकाश में स्थिर हो स्वयं उसे अपलक निहारते रहे और यह लंबी रात्रि भी साधारण रात्रि जैसी छोटी ही बनी रही। यह प्रसन्नता की बात है कि जिस ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पौराणिक महत्त्व के ग्राम को मुग़ल काल में महमदपुर या मुहम्मदपुर नाम दे दिया गया था उसका उत्तर प्रदेश की वर्तमान सरकार ने जनता की पुरानी

मांग को स्वीकारते हुए प्राचीन नाम पुनः परासौली ही कर दिया है। श्रीकृष्ण लीला से जुड़ा यह बड़ा ही पावन स्थल है। इसी गांव में जन्मे और 'ब्रज विभव' जैसे वृहद् ग्रंथ के संपादक श्री गोपाल प्रसाद व्यास जैसे विद्वान् तो इसी गांव को आदि वृंदावन मानते हैं। बहुत से विद्वानों के मतानुसार ऋषि पाराशर, कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास जी और महाकवि सूरदास जी की साधना – भूमि है यह परासौली। वे मानते हैं कि यहीं पर विष्णु पुराण, श्रीमद्भागवत महापुराण एवं सूर सागर की रचना हुई थी। यहां स्थित 'सूर कुटी' पर महाकवि सूरदास जी ने लगभग 70 वर्षों तक कृष्ण–भक्ति में आपादमस्तक डूबकर 'सूरसागर' के अधिसंख्य पदों की रचना की थी। पौराणिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण, किंतु अब तक सरकारी उपेक्षा के शिकार रहे इस ग्राम में मुझे स्वयं भी लगभग 15 वर्षों तक ब्रज कला केंद्र के राष्ट्रीय सचिव पद पर रहते हुए 'सूर जयंती' पर अनेक बार संगीत एवं काव्य – गोष्ठियां जैसे आयोजन करने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। चंद्रमा की शीतल और धवल चांदनी में महारास होने से यहां स्थित सरोवर को भी 'चंद्र सरोवर' के नाम से ही जाना जाता है। कृष्ण–भक्ति में अपना सर्वस्व निछावर कर देने वाले पुष्टिमार्गीय अष्टछापी आठों कवियों के बुर्जियों पर रखे जीर्ण – शीर्ण विग्रह भी इसकी उपेक्षा की कहानी कहते दिख जाएंगे। सूर कुटी के पास ही उस समय का प्राचीन पीलू का वृक्ष है जो अत्यंत जीर्ण – शीर्ण हो धराशायी भी हो चुका है।

सूर सरोवर के नैऋत्य कोण में ही श्रृंगार मंदिर है जहां श्रीकृष्ण द्वारा अपनी प्रियतमा रासेश्वरी श्रीराधा जू का श्रृंगार किया गया था। यहीं पर सूर – समाधि और महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक जैसे महत्त्वपूर्ण स्थल भी हैं। यद्यपि ब्रज तीर्थ विकास परिषद् द्वारा तेजी से इस स्थान का सौंदर्यीकरण का कार्य चल रहा है किंतु सूर कुटी की स्थिति जस की तस ही बनी हुई है।

सरकार को चाहिए कि इस तीर्थस्थल पर वसंत आगमन से ऋतु पर्यंत रास आदि के आयोजन वृहद् स्तर पर आयोजित करे ताकि ब्रज, वसंत और श्रीकृष्ण से जुड़े इस पावन स्थल से आम जन परिचित हो सके।

हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि रास कोई साधारण नाट्य – रूप नहीं है और ना ही वह कोई संगीत – रूपक है; उसमें तो सभी रस स्वतः समाहित हैं, इसलिए वह रास है। रास की नायिकाएं गोपिकाएं हैं जो अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को अपने भीतर छिपाकर उसकी रक्षा करती हैं। गोपिकाएं नाड़ियां हैं और श्रीकृष्ण उनके भीतर छिपी नाड़ी। विज्ञान की भाषा में यदि समझें तो श्रीकृष्ण यदि नाभि हैं तो उनके चारों ओर नृत्यरत गोपिकाएं न्यूट्रोंस और इलेक्ट्रॉन्स आदि। इसे इस अर्थ में भी समझा जा सकता है कि गोपिकाएं श्रुतिरूपा हैं जो श्रीकृष्ण के 'तत्त्वमसि' अर्थ का अनुसंधान करती हैं।

पुण्य – स्मरण

विनम्र श्रद्धांजलि

हमारे देश के शीर्षस्थ विद्वान साहित्यकार, आचार्य, संत, गायक उद्घोषक, चित्रकार, फोटोग्राफर हमसे और इस संसार से विदा हो गये हैं। कला समय परिवार इन सभी को अपने–अपने क्षैत्र में अतुलनीय अवदान को श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

– सम्पादक

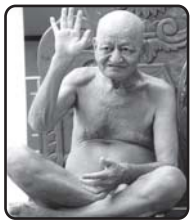

संत विद्यासागर महाराज
संत शिरोमणि

पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग
पद्मश्री से सम्मानित ध्रुवाचार्य

पंकज उधास
पद्मश्री से सम्मानित गायक

उषा किरण खान
वरिष्ठ साहित्यकार, कहानीकार

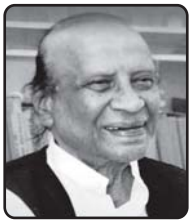

जयकुमार जलज
वरिष्ठ रचनाकार, प्रसिद्ध भाषाविद्

अमीन सायानी
वरिष्ठ उद्घोषक (फिल्म)

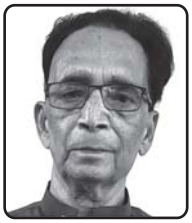

रशीद अंजुम
मशहूर लेखक,
इकबाल लायब्रेरी के सचिव

नर्मदा प्रसाद तेकाम
गोंड कलाकार

अनिल टेवरे
युवा प्रेस फोटोग्राफर

पुण्य-स्मरण

एक शोकगीत का संजीवनी-स्वर

– डॉ. सत्येन्द्र शर्मा

पिछले दिनों यह रचना पढ़ने-सुनने में आय :-

एक पक्षी की तरह तुम उड़ गई !
ताकता मैं रह गया आकाश को-
विधाता ने दिया तो जीवन हमें
पर लगामें हाथ में अपने रखी
कभी करता प्यार, देता छूट वह
कभी दिखलाता अचानक बेरुखी;
बुलावा आया अचानक छूट कर चल दीं
दोष क्या दूँ स्वयं के भुजपाश को।।1।।
नयन थे मेरे, निरन्तर देखतीं तुम थीं
पाँव थे मेरे मगर बस तुम्हीं चलीं थीं
जब मुझे कुछ सूझ पड़ता था नहीं
तुम दिए की तरह ही निष्काम जलती थीं
हे विधाता ! क्या किया तुमने कहो
ले गए तुम तोड़ हर विश्वास को।।2।।
जहाँ भी तुम हो, बताओ क्या करूँ मैं
भरा दुख का घट इसे कितना भरूँ मैं
चाहती तुम जो उसे अब भी करूँगा मैं
ठीक है अब खुद चलूँगा, खुद जलूँगा मैं
मानने तुमने नहीं दी हार जीवन में
रखूँगा जीवित इसी अभ्यास को।।3।।एक पक्षी की तरह...

जब जब मर्म को छूने वाली किसी काव्य-रचना से वावस्ता होने का अवसर मिलता है, तब तब एक काव्य प्रेमी, जिज्ञासु पाठक और शायद शिक्षकीय-प्रवृत्ति के नाते भी मेरी इस स्वनिर्मित पूर्व धारणा को बल ही मिलता है कि किसी कविता के मूल स्वर को कोई पाठक हू-बहू नहीं पकड़ सकता। मूल स्वर को पहचाना जाना कठिन नहीं है, कठिन है उन लहरों को पकड़ना कि वे रचनाकार के मानस सागर की कितनी गहराइयों, कितने आवर्ती, कितने सोपानों से या फिर एकदम सतह से उठकर आई हैं। प्राय: हम काव्य के ऊपरी स्वरूप को ही उसकी आत्मा से परिचय होना मान बैठते हैं जबकि कस्तूरी तो उसकी नाभि में होती है और इस कस्तूरी को पाना ही किसी पाठक का प्रेय और श्रेय होना चाहिए किन्तु वह उसकी प्रथम दृष्टया 'प्रियता' (प्रेम) को पाकर ही उसकी मूल चेतना 'श्रेय' को पा लेने का भ्रम पाल लेता है। साहित्य के अनेक रूपों में कविता

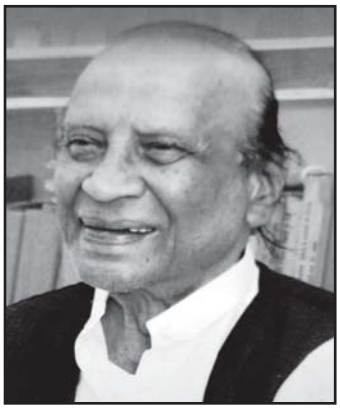

सबसे सूक्ष्म विधा मानी जाती है। गद्यलेखन को किसी कवि की कसौटी गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति । भले कहा गया हो किन्तु किंचित मनन कीजिए तो इस कथन की पृष्ठभूमि में भी काव्य लेखन के शीर्षता की चुनौती ही दिखाई पड़ रही है। इसलिए काव्य जितनी सूक्ष्म विधा है उतनी ही लेखन के अन्य रूपों की तुलना में लोकप्रिय भी। यद्यपि व्यवहार जगत के अन्य क्षेत्रों में सूक्ष्मता उतनी जल्दी संप्रेष्य नहीं हो पाती है और इसी कारण लोकप्रिय भी नहीं हो पाती, बल्कि स्थूलता अपनी पहचान और रुतबा बना पाने में ज्यादा कारगर हो जाती है। परन्तु कविता अन्य विधाओं के परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म होते हुए भी जनप्रियता के सर्वाधिक निकट है, यह आश्चर्यजनक सच्चाई है। और यह विधा लोकप्रिय होकर सामाजिकों के बीच कुछ इस कदर अपनी साख बना चुकी है कि कविता के नाम पर तुकबन्दियों, स्थूल भौंडे-कथन, चुटकुलेबाजियों, लफ्फांजियाँ, लमानियाँ, गला और गालीबाजियाँ सभी समादृत हो रहे हैं।

एक श्रेष्ठ काव्य की पीठिका के फेर में मैं स्वयं अपने मूल प्रतिपाद्यद्य से दूर चला आया, लगता हूँ। यह एक ताजा शोकगीत है जो डिजिटल में तैर रहा है; इसके काव्य-पाठ ने सहसा आकर्षित किया। पाठ का स्पष्ट उच्चारण और गद्य-पाठ सी लयात्मकता। यह एक तुकान्त गीत-कविता है; पूरी तरह छान्दिक और मात्रादि में सौ टंचखरी। तो इसे गाया भी जा सकता है। कल्पना में, बुद्धिनाथ मिश्र यश मालवीय और विष्णु सक्सेना के कंठ से अलग अलग सुनने लगा तो काव्य मंचीय उदात्तता का वह रंग उभर आया, जिसे कभी बलवीर सिंह 'रंग', श्रीपाल सिंह 'क्षेम', या नीरज आदि कवियों के स्वरों में सुनकर लोगों ने काव्य-रस की प्रतीति की है। वस्तुत: छन्द कविता के पूर्ण परिपाक का एक सोपान उसकी अभिव्यक्ति है। स्वर के उतार-चढ़ाव, आरोह-अवरोह, गति-यति से भाव विचार को प्रकर्ष में ले जाने का एक माध्यम है। किन्तु सचेत रहने की बात यह है कि काव्य उदात्तता उसकी बेहतर से बेहतर अभिनयात्मक अभिव्यक्ति में नहीं उसकी रचनात्मकता में है, एक ऐसी रचनात्मकता जिसमें भावनाओं की गहराई, विचारों की ऊँचाई और कलात्मक संयम

के विवेक का सामंजस्य हो। कलात्मक संयम में जितना जोर रचना के भावानुरूप छन्द चयन का है उससे कहीं अधिक भाषा की उपयुक्तता का है। विशेषकर शोक गीत में भाषा का विन्यास एक ऐसी ठहरी हुई लयात्मकता को रचने की चुनौती के रूप में कवि के सामने आता है जिसमें प्रिय के वियोग में न तो भावना के उच्छल प्रवाह का हाहाकारी उद्वेग हो और न ही नैराश्य के हतभाग्य का घटाटोप। इन दोनों अतिवादी स्थितियों से बचकर पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए भाषा की सहजता एक स्वाभाविक साधन है।

अमूर्त सैद्धान्तिकी की अपेक्षा उस रचना को सामने रखकर कोई बात कहना ज्यादा उपयुक्त होगा जो इस आलेख का उत्प्रेरक आधार है। इस शोकगीत के पहले बन्द में प्रिय के स्थाई विछोह की सूचना, नियति-शक्ति की सर्वोच्चता, सुख-दु:ख के दो रंगों से रंगे जीवन का कैनवास, और मनुष्य की अवशता-लाचारी। यह सब एक ही वाक्यांश में कहा गया है 'विधाता ने दिया तो जीवन हमें, पर लगामें हाथ में अपने रखीं। यों तो अर्थ की सघनता कविता की बुनियादी शर्त ही है किन्तु गीत-कविता का यह महत्वपूर्ण पक्ष है, क्योंकि लम्बे गीतों में भावों की सघनता के हानि की आशंका बनी रहती है। इसीलिए अपवादों को छोड़कर गीत-विधा के लिए प्रसिद्ध हुए कवियों की गीतात्मक रचनाएँ तीन या चार बन्द से अधिक की नहीं है। प्रिय के पक्षी की तरह उड़ जाने और आश्रय के भुजपाश से आलम्बन के छूट कर उड़ जाने की व्यथा अकस्मात् डॉ. रघुवीर सिंह के लिखे उस प्रसिद्ध निबन्ध 'ताज' का स्मरण करा देती है जिसका आरंभ ही मनुष्य की उस विवशता की मार्मिक अभिव्यक्ति में होता है, जिसमें साधारण व्यक्ति तो क्या, एक बड़े साम्राज्य का बादशाह भी अपनी प्रिया को अपनी आँखों के सामने बिछुड़ते देख रहा है। एक क्षत्रप का हृदय-साम्राज्य उसकी मुट्ठी से खिसक रहा है और वह शिशुवत् किंकर्तव्य बिमूढ़ उस स्थिति का दर्शक मात्र रह गया है।

सुदीर्घकालावधि के दाम्पत्य जीवन का यह अलगाव दो विरोधी लैंगिक-युग्म में से किसी एक की दैहिक सत्ता का स्थूल विछोह नहीं है; वरन् यह भाव-विवेक और चेतना के स्तर पर एक ऐसी यौगिक इकाई के टूटने का त्रासदी है जिसके सुख-दुख, आनन्द-विषाद, मीठे-कड़वे आस्वादों, अनुभवों-स्मृतियों के अनंत और अछोर सिलसिले उस युग्म से बचे एक के 'मान सरोवर' में हैं। यह बिछुड़न जीवन के अरण्य में विचरते, घौंसला बनाते, थकते-टूटते, हारते-जीतते, दौड़ते-हॉफते और प्रसन्नता और अवसाद में परस्पर स्पर्श का लेप लगाते एक जोड़े का है। और पुरुष यदि 'एक नारि व्रत रत सब झारी' की साधना सिद्धि वाला है, तब तो उसकी नियति उस 'शिव' की भाँति है जिनकी प्राण शक्ति और समूची ऊर्जा 'शिवा' में निहित है। शिवा ही शिव की दृष्टि है, गति और गन्तव्य है, मति और मन्तव्य है। वह शिव के चेतना की चिति है, वही शिव के राग और सृजन की सेतु है, उसका औदार्य समाज के कल्याण का हेतु है, अन्तत: वह शिव की रागना शक्ति है 'शव-शिव-शक्ति महान' निराला)। वास्तव में भारतीय जीवन-दर्शन में विवाह एक सामाजिक व्यवस्था और संस्थागत रूप ही नहीं है, वह उससे अधिक दो शरीरों की आत्मिक अभिन्नता है 'गिरा-अरथ, जल-वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न जैसा ऐक्य।' इसलिए जो दम्पती इस (विवाह) संस्कार को परस्पर विश्वास, मैत्रीभाव, सम्मान, साहचर्य और सहयोगी के रूप में निभाते हुए एक दूसरे की दृष्टि, कर्म-चेतना और निष्काम त्याग वृत्ति का अंग बनते हैं, तब उनमें से किसी एक का अभाव, जीवन के विश्वास का टूटना ही तो है- 'ले गए तुम तोड़ हर विश्वास को। अब लम्बे साहचर्य की वही स्मृतियाँ थकातीं हैं तो वही मातृवत थाप और साँत्वना भी देती हैं। निराला के पास तो जैसे पीड़ाओं की स्मृतियों का मेला था। उनके इसी तरह की (स्मृति) शीर्षक कविता में वे एक जगह कहते हैं 'रेणु वह किस दिगन्त में लीन/वेणु ध्वनि-सी न शरीराधीन।' (अपरा-पृष्ठ 107)

प्रेम जीवन-जगत और सृष्टि का मूलाधार है। वह जीवन का श्रृंगार है। इसके मर्म और धर्म को कौन कितना समझकर, उसे किस सोपान में ग्रहण कर अपने जीवन में आचरित कर सका है, यही उसके महत्व की कसौटी है। दाम्पत्य जीवन का तो यह आधारभूत तत्व ही है। पति, पत्नी नामक इकाइयों में प्रेम का संचार होने से ही वे दम्पती है। यदि उनके बीच परस्पर प्रेम नहीं है तो ऐसे दाम्पत्य जीवन (?) की अपनी रौरव गाथाएँ हैं। अस्तु! प्रेमी, प्रिय को हारते हुए नहीं देखना चाहता; वह सदा उसकी जीत का आकांक्षी है, उसकी जीत में वह अपनी जीत देखता है और स्वयं हारकर भी प्रिय को जीतते हुए देखने में अपनी जीत मानता है। इस शोकगीत में आश्रय को इस बात का भी रोना (?) है कि उसके प्रिय ने 'मानने तुमनेनहीं दी हार जीवन में' हार नहीं होने दी और हुई भी तो उसे मानने नहीं दिया (मन के हारे हार है, मन के जीते, जीत)। निराला कृत 'राम की शक्ति-पूजा' का वह अंश संभवत: सबसे अधिक रोचक, आकर्षक, प्रेरक, मानवीय और मनोवैज्ञानिक है जिसमें श्रीराम, रावण के दुर्द्धर्ष-युद्ध- कौशल से थके-हारे, भयग्रस्त और अपनी जीत के लिए संशयग्रस्त दिखाई पड़ रहे हैं और ऐसे अत्यन्त निराशा के क्षणों में उन्हें अपनी प्रिया सीता का स्मरण 'फिर विश्व विजय भावना हृदय में आई भर' जीत की संभावना से आपूरित कर देता है। ध्यान से विचार करेंगे तो पाएँगे कि यह प्राय: प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की राम कहानी है कि उसका प्रेम-पात्र जीवन संघर्ष की प्रेरणा और संबल बनता है। इसलिए इस गीत का यह तीसरा समाहार अंश और अधिक प्रेरणास्पद और उसकी तासीर को बढ़ाने वाला है। 'चाहती जो तुम उसे अब भी करूँगा मैं ठीक है अब खुद चलूँगा, खुद जलूँगा मैं।' दिवंगत प्रिय को निरन्तर कार्यरत, और सक्रिय बने रहने का आश्वासन है, यह। क्यों कि उसने उसे हमेशा कर्ममय और जीवन को उर्ज्वसित बनाए रखने के लिए प्रेरित किया है।

शोकगीत, करुणा की अभिव्यक्ति है। करुणा जीवन की एक मनोदशा है, इसीलिए साहित्य के वेताओं ने उसे रस के रूप में प्रतिष्ठित भी किया है। किन्तु साहित्य की प्रतिज्ञा तो व्यक्ति जीवन के उन्मीलन, उन्मेष

और उन्मोचन की है। उसका सन्देश तो करुणा के कारण का परिहार कर माँ निषाद प्रतिष्ठाम्..... नवजीवन का अन्वेषण करने की है, उसकी नियति विपरीत परिस्थिति में भी चरेवैति, चरैवेति की प्रेरणा जगाने की है, इसलिए साहित्य का कोई भी काव्य रूप हो और व्यक्ति की किसी भी मनोदशा का स्वरूप हो उसमें जीवन के नव अंकुरण और नव प्रकाश की प्रेरणा ही अभिप्रेत है। इस सन्दर्भ में वर्षों पहले पढ़ी गई बच्चन जी की जीवनी के किसी खंड-शायद 'नीड़ का निर्माण फिर' में उनकी लिखी एक आप बीती याद आ रही है जिसमें उन्होंने एक प्रसंग का जिक्र किया है कि वे किसी कवि सम्मेलन में काव्य पाठ कर रहे थे। काव्य-पाठ मध्यरात्रि के आगे वाले प्रहर तक चला। दिन में जब वे किसी मित्र के यहाँ स्वल्पाहार ले रहे थे तो समीप ही रेल की पटरी से कटकर एक व्यक्ति के मरने की सूचना उन्हें भी मिली। दूसरे दिन अखबार में उस व्यक्ति का चेहरा देखकर वे हैरान रह गए कि यह वही व्यक्ति है जो सम्मेलन की अगली पाँत में बैठकर कवि की आँख में आँख डालकर काव्य-पाठ सुन रहा था। बच्चन स्वीकारते हैं कि उनके उस काव्य में करुणा और निराशा थी ओर वे पश्चिम के अनेक कवियों का हवाला देते हुए ऐसे काव्य के औचित्य पर विद्वतापूर्वक विचार रखते हैं। प्रसाद जी हिन्दी साहित्याकाश के बड़े और दार्शनिक कवियों में हैं किन्तु उनकी घनीभूत पीड़ा जब 'आँसू' बनकर सामने आई और उनकी वेदना 'जब हाहाकार स्वरों में गरजने लगी' तो विद्वानों ने इसे आश्चर्य और कौतुक से देखा, संभवत: प्रसाद जी को भी निराशा का यह वैयक्तिक स्वर स्वयं न भाया हो और शीघ्र ही उन्होंने इसके दूसरे संस्करण में उसकी व्यथा को 'वसुधा की करुण कहानी' कहकर इसके कथ्य को सार्वभौमिक रूपान्तरण दे दिया।

इस शोकगीत के काव्य में अवगाहन करते हुए उक्त ब्योरे प्रसंगवश ही आ गए हैं; इसका उद्देश्य दूर दूर तक इस कविता के साथ इन शीर्ष कवियों के कृतित्व का मूल्यांकन करना नहीं है। यदि यहाँ ऐसा आभास भी होता है तो इसे लेखकीय अभिव्यक्ति की अक्षमता ही समझा जाना चाहिए। मेरा आशय तो विवेच्य कविता का विश्लेषण करना भी नहीं है, क्योंकि मेरा अनुभव है कि किसी कविता का सटीक अर्थ पाया नहीं जा सकता। स्वयं काव्यकार के मन में रचते हुए अर्थ की वही ध्वनियाँ नहीं होती जो पाठक अपने अपने तरह से उन्हें ग्रहण करते हैं। वे उससे कम या अधिक हो सकती हैं जो रचते वक्त रचनाकार के मन में रही होंगी। 'पहाड़ का लालटेन' काव्य संग्रह पर समीक्षा पढ़कर मंगलेश डबराल ने मुझे एक पोस्टकार्ड लिखा, जिसका आशय था कि उनके संग्रह की 'आवाजें' शीर्षक कविता में जिन प्रतिध्वनियों का अन्वेषण किया गया है और उससे उनके कथ्य में जो धार और तार्किकता दिखाई पड़ने लगी है, उससे वे अभिभूत हैं किन्तु यह उनकी कल्पना में न था। तो सटीक उसी काव्यार्थ को पाना जो रचनाकार का अभिप्रेत है, संभव नहीं है। अलबत्ता, रचना की मंशा के वृत में पहुँचा जा सकता है। इसके बावजूद इस थोक परक गीत-कविता के तीनों बन्दो के एकान्वित सन्देश बहुत मुखर हैं।

हिन्दी साहित्य में आठवें दशक से नारी विमर्श प्रधान मुद्दा बनकर छाया रहा है, नि:सन्देह यह समय, समाज और साहित्य के लिए बहुत आवश्यक पहलू है किन्तु दुर्भाग्य से इसका नेतृत्व वे लोग ले उड़े जिनके लिए नारी विमर्श के लिए सुविचारित महादेवी वर्मा द्वारा निर्दिष्ट 'श्रृंखला की कड़ियाँ (यों) जैसी विदुरपताओं से मुक्ति नहीं वरन् स्वच्छन्दता, स्वेच्छाचारिता और स्वैराचार की अठखेलियों की पैरोकारी थी। वे लेखन, लोक-व्यवहार यहाँ तक कि अपने दाम्पत्य जीवन में भी 'शह और मात' का खेल खेलते रहे और उनके असल स्वरूप का दर्शन कराने के लिए उनके समर्पित और आत्मीय सहचरों को 'एक कहानी यह भी' जैसे विश्वसनीय वृतान्त सामाजिकों के सामने लाने पड़े। वहीं इस पूरे शोकगीत में एक पुरुष की उस सह धर्मिणी के लिए कृतज्ञता बोध तो है ही, जो उसके जीवन-पथ को अपने औदार्य-स्नेह-राग और समर्पण से आलोकित करती रही है, उसकी चुनौतियों और संघर्षों में आगे आकर सामना करती रही है बल्कि उस नारी के लिए उन भावनाओं की समवेत, श्रद्धाभाव की अभिव्यक्ति है, जिन हाथों की एक एक अंजलि में तिल-तिल स्मृतियों की बस्ती बसी हुई है। पारिवारिक-सामाजिक समरसता की उच्च मनोभूमि के निर्माण करने में जहाँ ऐसी काव्य रचनाओं की महत् भूमिका है वहीं राष्ट्रीय सन्दर्भ में नारी-विमर्श की साँस्कृतिक विरासत को समझने में भी मदद मिलती है।

यह शोक-गीत हिन्दी के विश्रुत आचार्य डॉ जयकुमार जलज ने कुछ दिनों पूर्व (निकट अतीत) अपनी संगिनी के विछोह में लिखा है। वे आज नवासी वर्ष के यशस्वी पथ के पथिक हैं। उनके कविता संग्रह 'किनारे से धार' में सन् 1954 में जब वे बीस वर्ष के थे लिखा एक गीत पढ़ा जा सकता है ''मैं किस किस द्वारे अपना मस्तक धरूँ, मुझे हर द्वार तुम्हारा द्वार दिखाई देता है... मैं बहुत विवश, दो पाँव, कहाँ किस तक दौड़ें। तुम-सा सारा संसार दिखाई देता है।'' जलज ने अपनी कविताई को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अध्ययन काल में ही साथ लिया था और इसीलिए यह संयोग मात्र नहीं था कि निराला के 'गीत-गुंज' के संग्रह के पुनर्मुद्रण में कवि के प्रति युग कवि पन्त, डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. रामविलास शर्मा, श्री जानकी वल्लभ शास्त्री के साथ जलज की लिखीं पंक्तियाँ ही काव्यांजलि में समेकित की गई। मेरा विनम्र संकेत कवित्व की उदात्तता के ध्यानाकर्षण का नहीं बल्कि यह है कि आचरण की उदात्तता से कृतित्व की उदात्तता सधती है, फिर वह संकल्प-गीत हो या इस तरह का शोकगीत-दोनों में मनुष्य भाव और मनुष्य का हित सन्निहित है और पौर्वात्य दर्शन में भी साहित्य की यही आवधारणा है कि उसके शोक गीत में भी संजीवनी हो।

संपर्क: श्यामायन, सहकार मार्ग
सतना 485-001
दूरभाष: 07672 233310

लघु कथा

हाफ पैरा- 4 लघु कथाएं

-डॉ. राजेश श्रीवास्तव

हाफ पैरा-1

शान्तिदूत

नेताजी ने कबूतर उड़ाया तो वह सामने के पेड़ पर जाकर बैठ गया। वहीं बैठी एक चिड़िया ने कबूतर से पूछा – तुम कौन हो ? यह नीचे क्या हो रहा है ? तुम वहां क्या कर रहे थे ?

कबूतर मुस्कुराया – मैं शान्तिदूत कबूतर हूं । वहां वे आजादी का उत्सव मना रहे हैं। अभी अभी मुझे भी पिंजरे से आज़ाद किया है ?

चिड़िया – लेकिन हम परिंदे तो पहले से आज़ाद हैं !

कबूतर – वे हर साल मुझे पकड़ते हैं और फिर आज ही के दिन छोड़ देते हैं।

चिड़िया – वे सब लोग कौन हैं ?

कबूतर – वे सब भी कबूतर हैं, पर उन्हें उड़ना नहीं आता।

यह कहकर कबूतर उड़ गया ।

========

हाफ पैरा-2

चरैवेति

खरगोश ने इस बार बहुत समझदारी से काम लिया। वह सोया नहीं और दौड़कर रिकार्ड समय में गन्तव्य पर पहुंच गया। कछुआ पीछे । बहुत पीछे।

अगले दिन दोनों मिले । कछुआ हमेशा की तरह खुश। खरगोश को आश्चर्य हुआ।

उसने पूछा – हारने का बिल्कुल भी दुख नहीं है क्या ? तुम फिर हार गए।

कछुए ने कहा – कैसी हार ! चलना मेरे लिए कोई प्रतियोगिता नहीं है। यह मेरे लिए एक साधना है। जो लोग सम्मान के लिए भागते हैं, उन्हें पुरस्कार भले मिल जाए, सम्मान कभी नहीं मिलता। जीवन के हर पल का आनंद लेना चाहिए। कहकर कछुआ अपने मार्ग पर चल पड़ा।

खरगोश देखता रह गया।

=======

हाफ पैरा-3

कवि और कविता

संगोष्ठी का बैनर बड़ा था। स्थान सुपरिचित । नगर के सिद्ध, प्रसिद्ध, उद्यमी और रसिक मित्र अपने काव्यानुभव के रंजन हेतु तत्पर थे। मंच से कविता पढ़ना मानों अपनी विजयगाथा का उदघोष । रोशन मंच का छायाचित्र लेने को तत्पर फोटोग्राफर, समाचारपत्र में प्रकाशन हेतु कविता की आरंभिक पंक्ति पूछता हुआ आयोजक और कवियों की उपस्थिति को निहारता संचालक । दर्शक दीर्घा के ठीक पीछे बेतरतीब फैले हुए चाय के कप और थैले में बंद समोसे की भीनी-भीनी सुगंध संगोष्ठी आयोजन को जीवंत बनाए हुए थी।

वे बुजुर्ग आंखों में गहरी चमक लिए सबसे पीछे की कतार में बैठे थे। एक पुरानी डायरी को अपने सीने से चिपकाए । उनका नाम काव्यपाठ सूची में सम्मिलित नहीं था लेकिन उन्हें विश्वास था कि प्रभु अवश्य ही कोई चमत्कार करेंगे।

सारे कवियों के पाठ होने के उपरांत संचालक महोदय ने कहा कि यदि किसी का नाम छूटा हो तो कृपया वे भी आकर काव्यपाठ कर सकते हैं। बुजुर्ग ने हाथ खड़ा किया। उनके स्वागत के लिए तालियां बजी और वे धीरे-धीरे मंच की ओर बढ़े।

उन्होंने मंच की सीढ़ियों को सिर से छूकर प्रणाम किया। थरथराते हाथों से माइक को छुआ। कांपती उंगलियों से डायरी के पृष्ठ को खोला। वे पढ़ने का प्रयास कर रहे थे किंतु उनकी आंखों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे।

सबने देखा – मंच पर एक कविता घटित हो रही है।

========

हाफ पैरा -4

पूरा अधूरा

हाफ का क्या मतलब ?- उसने पूछा

-हाफ मतलब आधा

-कौन-सा आधा ?

-मतलब ?

-आधा भरा या आधा खाली।

- इससे तुम्हें क्या ?, तुम तो आधे का आनंद लो ।

- क्या तुम मानते हो कि हाफ मतलब आधा-अधूरा है ।

-नहीं, बिल्कुल नहीं । कुछ चीजें अपने आधेपन में ही प्रखर, मुखर और सार्थक होती हैं । पूर्णता का वैसे कुछ अर्थ होता ही नहीं । हाफ मतलब अपूर्ण नहीं है । यह हाफ पूर्ण वाला ही हाफ है ?

- बहुत उलझाव है ।

- जीवन चलने का नाम है । जिंदगी एक रास्ता है बस ?।

- कुछ अधिक दार्शनिक नहीं हो रहे ? दर्शन ही तो साहित्य का अंतिम लक्ष्य है। होना भी चाहिए। हाफ का आनंद अद्भुत है। सारगर्भित और पूर्ण भी । अनंत संभावनाओं से भरा हुआ।

-तुम्हारे अधूरे शब्द चित्र को समझेगा कौन ?

-अधूरे चित्रों और अधूरे रिश्तों का मोल पूरे से कहीं अधिक होता है। अधूरे चित्र और अधूरे मित्र जानबूझ कर बनाए जाते हैं। चाहो तो आज़मा लेना।

लेखक: निदेशक रामायण केन्द्र भोपाल
मुख्य कार्यपालन अधिकारी, तीर्थस्थान एवं मेला प्राधिकरण, भोपाल हैं।
संपर्क: ई-15, 45 बंगले, भोपाल (म.प्र.) मो. 7974004023

■

प्रसंगवश

बहिरौ सुनें मूक पुनि बोलै

–डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

सुल्तान शम्सुद्दीन अल्तमश के राज्य में दो भाई थे सावंत और बूला। इन दोनों में से एक भाई गूंगा था और दूसरा बहरा। जाहिर सी बात है कि यह दोनों संगीतकार तो हो ही नहीं सकते। इस संबंध में जो एक नायाब किस्सा संगीत के इतिहास में प्रचलित है, वह कुछ इस प्रकार है –

एक बार सुल्तान शम्सुद्दीन अल्तमश को अपने दरबार में संगीत का एक जोरदार जलसा कराने की इच्छा हुई। उसने अपने मंत्री को आदेश दिया कि उसके राज्य में जो भी श्रेष्ठ संगीतकार हों, उनके गायन का कार्यक्रम दरबार में कराने हेतु उन्हें आमंत्रित किया जाए। मंत्री जब उत्कृष्ट संगीतकारों की खोज में राज्य में भ्रमण पर निकला तो कुछ मनचले लोगों ने सावंत और बूला का उपहास हो, इस दृष्टि से मंत्री से कह दिया कि वे दोनों भाई उत्कृष्ट कोटि के गायक हैं। मंत्री द्वारा सुल्तान के समक्ष इन दोनों भाइयों के नाम का प्रस्ताव रख दिया गया। सुल्तान ने भी मंत्री की सलाह मानते हुए इन दोनों भाइयों को दरबार में आकर गाने हेतु निमंत्रण भिजवा दिया। सुल्तान का निमंत्रण पाकर सावंत और बूला अत्यंत आश्चर्य में डूब गए और चिंतित होने लगे कि आखिर किस प्रकार हम सुल्तान के समक्ष जाएं? जाएंगे तो गाएंगे कैसे और न जाएं तो सुल्तान के आदेश की अवहेलना होती है। वे मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करने लगे कि किसी भी प्रकार से भगवान् उनको इस गंभीर संकट से मुक्ति दिलाएं। सावंत और बूला के इस प्रकार धर्म-संकट में। पड़ जाने की बात किसी तरह उस समय के प्रसिद्ध संत हजरत ख्वाजा ए ख्वाजगान को मालूम पड़ी। उन्होंने इन दोनों भाइयों को इस संकट से उबारने हेतु अल्लाह से प्रार्थना की। उन्होंने उन दोनों को बेझिझक सुल्तान के दरबार में पूर्व निर्धारित समय पर पहुंच जाने की सलाह दी। हजरत ख्वाजगान की बात मानकर सावंत और बूला निश्चित समय पर दरबार में उपस्थित हो गए। सुल्तान का आदेश पाकर जैसे ही उन्होंने ईश्वर का स्मरण कर गाना प्रारंभ किया तो सुल्तान उनके गायन पर मंत्रमुग्ध हो उठे।

आगे चलकर इन्हीं सावंत और बूला के वंशजों द्वारा संगीत के एक घराने की स्थापना की जिसे आज भी 'कव्वाल बच्चे का घराना' नाम से जाना जाता है। इस घराने के कलाकारों ने ही सर्वप्रथम रागों में फिरत के काम का सूत्रपात किया जिसकी नकल बाद में ग्वालियर घराना सहित अन्य कई घरानों के कलाकारों ने की। शायद महान् संत संगीतज्ञ और कवि महात्मा सूरदास जी ने भी ऐसी ही ईश्वरीय शक्ति का दर्शन अपने प्रज्ञा-चक्षुओं से कर लिया था। तभी तो लिख दिया कि –

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कछु दरसाई।
बहिरौ सुनें मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।।

ब्रज साहित्योत्सव में डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल का हुआ सम्मान

मथुरा- 21 फरवरी। उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग, संस्था 'गाथा' और संस्कृति विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में संस्कृति विश्वविद्यालय के विशाल प्रांगण में आयोजित 'ब्रज साहित्योत्सव - 2024' में ब्रज के साहित्य, कला और संस्कृति मर्मज्ञ, संगीतज्ञ, कवि, लेखक और संपादक डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल ' रजक ' को ब्रज - भाषा साहित्य की श्रीवृद्धि में उत्कृष्ट योगदान हेतु 'ब्रज - भाषा भूषण सम्मान - 2024' प्रदान कर सम्मानित किया गया। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ. सचिन अग्रवाल एवं सहयोगी संस्थाओं के पदाधिकारियों द्वारा डॉ. अग्रवाल का शॉल ओढ़ाकर, सम्मान-पत्र और स्मृति-चिह्न प्रदान कर अभिनंदन किया गया। इस अवसर पर डॉ. अग्रवाल ने आयोजक सभी संस्थाओं के प्रति आभार प्रकट करते हुए ब्रज-भाषा में रचित चन्द छंद सुनाकर उपस्थित दर्शकों को भरपूर गुदगुदाया।

इस अवसर पर देश के दूर-दराज के क्षेत्रों से आए विविध विधाओं के शास्त्रीय संगीतज्ञों ने एक से एक शानदार कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए। फ्लेमिंगो और कत्थक का फ्यूजन काबिले तारीफ़ था। फिल्म जगत के मशहूर कलाकार अनु कपूर भी सभी दर्शकों के आकर्षण का केंद्र रहे।

ज्ञात हो कि इस सम्मान से कुछ ही दिनों पूर्व डॉ. अग्रवाल को वृंदावन की प्रख्यात् सांस्कृतिक संस्था 'बांसुरी' द्वारा नाट्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान हेतु 'वंशी अवतार श्री हित हरिवंश महाप्रभु सम्मान' और हिंदी भवन, नई दिल्ली में 'अमृत महोत्सव नेशनल अवॉर्ड - 2023' तथा राजस्थान से 'संगीत सदुरु' और 'संगीत - रत्न' सम्मान भी प्राप्त हुए हैं।

पुस्तक समीक्षा

नई विधा की किताब-छोटे मुंह छोटी सी बात

– राजनारायण बोहरे

पुस्तक विवरण-

कृति	:	'छोटे मुँह छोटी सी बात'
लेखक	:	संतोष तिवारी
प्रकाशक	:	कला समय प्रकाशन, भोपाल (म. प्र.)
मूल्य	:	₹450/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण : 2023

'कला समय प्रकाशन' भोपाल से प्रकाशित पुस्तक 'छोटे मुंह छोटी सी बात' संतोष तिवारी द्वारा लिखित एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। इस पुस्तक को महत्वपूर्ण इसलिए कहा जा रहा है कि जिस विधा में यह किताब रची गई है, वह विधा हिंदी में अभी तक प्रचलन में नहीं है, यानी इस विधा की कोई पुस्तक हिंदी में अभी तक देखने में नहीं आई है। पुस्तक की विधा की बात करें तो दरअसल इसमें लेखक संतोष तिवारी द्वारा रचे गए वे वाक्य हैं, जिन्हें अगर एक शीर्षक देकर सूक्ति वाक्यों के रूप में एकत्र कर लिख दिया जाता तो वह दर्शन अथवा लोक व्यवहार की बड़ी किताब बन जाती। लेकिन लेखक ने इन्हें बिना लाग लपेट और बिना छिपाव व दुराव के वैसे ही प्रस्तुत किया है, जैसे यह मंच पर बोले गए। सवाल यह कि बोले कहां गए ? इसके उत्तर को भी लेखक ने बताया है। दरअसल लेखक संतोष तिवारी पेशे से तो इंजीनियर हैं, लेकिन इस पुस्तक को पढ़ने के बाद लगता है कि वह एक बड़े विचारक, विद्वान, लेखक और दार्शनिक हैं। लेकिन इन गुणों के साथ सन्तोष जी में एक गुण रेडियो फोनिक आवाज के धनी होना या आकाशवाणी के उद्घोषक जैसा स्वर का धनी होना भी शामिल किया जाना चाहिए।

संतोष तिवारी राज्य स्तरीय शासकीय कार्यक्रमों के बड़े संचालक हैं। उन्होंने राष्ट्रपति, मुख्यमंत्री, विधायक और निजी महाविद्यालयों के उद्घाटन से लेकर राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री की मौजूदगी में संपन्न हुए भोपाल के बड़े-बड़े कार्यक्रमों का संचालन किया है। संचालन की कला में तमाम रेडियो उद्घोषक और वक्ता तथा कई निपुण होते हैं। अनेक कवि केवल कवि सम्मेलनों के संचालन के लिए जाने जाते हैं। अनेक वक्ता केवल वक्तत्व के लिए नहीं संचालन के लिए भी अपनी अलग पहचान रखते हैं। प्रदेश के ऐसे संचालकों में डॉक्टर के बी एल पांडेय, बैजू कानूनगो, महेश पटेल आदि के नाम प्राथमिक तौर पर स्मृति पटल पर आ जाते हैं। संतोष तिवारी बड़ी मेधा के धनी हैं, वे जब किसी कार्यक्रम को संचालन करने जाते हैं, तो उसके पहले पर्याप्त होमवर्क करते हैं। नेताजी सुभाष चंद्र बोस की प्रतिमा के अनावरण में तभी तो वे कह पाते हैं ' भारतीय जनमानस में राजा राम की जगह वनवासी राम, धनुर्धारी राम ही अधिक समय और छाए हुए हैं, इसी तरह धवल वस्त्रधारी की जगह फौजी गणवेश धारी सुभाष बाबू ही जनता को अधिक भाते और लुभाते हैं। उनका यही लोकप्रिय रूप इस अनावृत प्रतिमा में है। (पृष्ठ 16) इस तरह वे जन प्रतिनिधि या लोक चेतना के नायक राम के समान नेताजी सुभाष बोस की इस रूप में तारीफ कर एक नई दृष्टि से सुभाष को देखने का संदेश देते हैं। एक विशिष्ट बात संतोष तिवारी में यह है कि उन्होंने ऐसे अनेक मंचों का संचालन किया है, जहां विचारधारा के और धर्म के स्तर पर अलग-अलग मजहबों, दलों और विचारधाराओं के लोग उपस्थित थे। लेकिन उन्होंने संचालन में गजब का संतुलन कायम किया। एक कार्यक्रम राजेंद्र माथुर स्मृति पत्रकारिता फैलोशिप पर हुआ, जिसमें देश के तत्कालीन राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा, मध्य प्रदेश के राज्यपाल मोहम्मद शफी कुरैशी और मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह उपस्थित थे। उसी कार्यक्रम में सत्ता और नेता के चरित्र की उद्यत प्रवृत्ति ही रही होगी कि वे सत्ता के चरित्र की क्रूरता को ललकार रहे थे। वे बोले' सत्ताएं अपनी सुरक्षा में सच बोलने वाली जीभ को उतनी ही देर सुरक्षित रखती हैं जितनी देर वह हिलती है। सत्य की वकालत में हिलने वाली जीभ को काटकर जेब में रखने का षड्यंत्र, सत्ता के सहज व्यवहार में आते हैं। क्या ऐसे में संभव है कि सत्ता और प्रेस के बीच भाईचारे का तर्क कम करें। (पृष्ठ 14) राज्यसभा सहित अनेक राष्ट्रीय टीवी चैनल की ख्यात राजनीतिक सामाजिक विश्लेषक अमृता राय ने भी इस साहसी कथन की प्रसंशा की है। (पृष्ठ xvi)

नेहरू जी पर बोलते हुए उन्होंने नेहरू स्मृति वन भोपाल में कहा 'नेहरू जी का प्रकृति प्रेम इस गहराई तक था कि प्रेम ही उनकी प्रकृति बन गई थी। उनके लिए प्रकृति से जोड़ने का अर्थ था विराटता और विशालता से जुड़ना, परिणाम तथा उदारता से जुड़ना। (पुस्तक का कव्हर पृष्ठ) नेहरू के इस उदार रूप की कल्पना और सार्वजनिक परिभाषा करना संतोष तिवारी के बस में ही है।

विभिन्न विचारधाराओं के लोगों की उपस्थिति का ऐसा ही एक अद्‌भुत मंच था भोजपुर के शिव मंदिर की अनुरक्षण एवं विकास परियोजना के शुभारंभ समारोह का। इस आयोजन में राष्ट्रपति डॉ शंकर दयाल शर्मा, जगत गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानंद, राज्यपाल श्री मोहम्मद शफी कुरैशी, मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह और पूर्व मुख्यमंत्री

श्री सुंदरलाल पटवा जैसे विभिन्न स्तरों के लोग मौजूद थे, जो जाति, मजहब, धर्म की उत्कृष्ट सत्ता और शासकीय सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर रहने वाली अपनी-अपनी विभूतियां थी। ऐसे में किस तरह से एक संचालक अलग-अलग व्यक्ति को बुलाए, यह बड़ी चुनौती रही होगी। शिव मंदिर के इस आयोजन में उन्होंने राज्यपाल श्री मोहम्मद शफीक कुरैशी को इन शब्दों से बुलाया भारतीय संस्कृति का समन्वयवादी रूप इस्लाम में एक ईश्वरवाद तथा सनातन धर्म के अद्वैतवाद के 'ब्रह्म सत्यम में समानता देखता है और समान सम्मान देता है। इस्लाम में जो निराकार है वह सनातन में भी निराकार ही है, निरुप है इसलिए सर्वरूप है। संस्कृत के इस रूप को अपने आचरण का आदर्श मानने वाले महामहिम राज्यपाल श्री मोहम्मद शफी कुरैशी उद्बोधन के लिए सादर आमंत्रित हैं।' (पृष्ठ 7) इसी आयोजन में शंकराचार्य जी को बुलाते हुए लेखक बोले 'आदि शंकराचार्य से अद्वैतमत स्थापित तो करते थे पर साथ ही उस स्थान विशेष की प्रचलित पूजा पद्धति और विग्रह को यथा सम्मान वहीं स्थापित भी कर देते थे। इस तरह अद्वैत की एकता में बहुदेव की अनेकता समाहित रहती थी। एक में अनेक, अनेक में एक इसकी परिणीति हुई देश को एक सूत्र में बांधने के लिए चार मठों की स्थापना के रूप में। ज्योर्तिमठ और शारदा मठ के पूजनीय शंकराचार्य जी की कृपामयी उपस्थिति हमारे लिए सौभाग्य और हर्ष का अवसर है और आनंद तो आपके आशीर्वाद से मिल ही जाएगा। प्राणी मात्र आनंद चाहता है पर उसे मिलता है आनंद का भ्रम।

सेवक साधु द्वैत भृम त्यागे, श्री रघुवीर चरणलय लागे देहजनित विकार सब त्यागे, तब फिर निज स्वरूप अनुरागे।

पर यह मिले कैसे यह तो पूज्य पास सीधे स्वरूपानंद जी के आशीष वचनों से ही संभव होगा। (पृष्ठ 8)

इस विशिष्ट पुस्तक में लेखक ने अपना आत्मकथ्य 'बयान: इकबालिया' के नाम से लिखा है। वह कहते हैं 'इस किताब को उपन्यास, कहानी, कविता, निबंध, संस्मरण अथवा साहित्य की किसी भी अन्य विद्या में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। यह भाषणों का संकलन भी नहीं, इसमें केवल कार्यक्रमों के संचालन में संचालक अर्थात मेरे द्वारा बोले गए शब्द हैं बस । स्पष्ट है किताब के साथ छपे हुए नाम को लेखक का दर्जा भी नहीं दिया जा सकता।

मसि कागद छुओ नहीं ही मेरी काबिलियत है।

घूम फिर कर वही यक्ष प्रश्न यह किताब क्यों ? मकसद स्पष्ट करता हूं। बड़े-बड़े कॉरपोरेट हाउस और विशाल औद्योगिक इकाइयां देश की जीडीपी बढ़ाते हैं, मगर सड़क किनारे लोहा पीटने वालों का भी इसमें कुछ तो योगदान रहता ही है। यही बात भाषा के क्षेत्र में भी है। दिग्गज साहित्यकारों और विशेषज्ञों के अलावा मुझ जैसे लोहा पीटने वाले भी हिंदी की कुछ तो सेवा करते ही हैं। डॉक्टर त्रिहात्र या ब्रीच कैंडी हॉस्पिटल हर व्यक्ति की पहुंच में नहीं है। उपहास और तिरस्कार सहने वाले झोलाछाप डॉक्टर द्वारा सुदूर ग्रामीण अंचलों में की जा रही, थोड़ी ही सही, सेवा को नकारा नहीं जा सकता। हिंदी की सेवा में मुझे झोलाछाप कहलाए जाने में कोई गुरेज नहीं। (पृष्ठ xi)

इस पुस्तक में अन्य लेखकों ने भी अपने नोट्स, टिप्पणियां अथवा निबंध और लेख के रूप में शामिल किए हैं, जिनमें मेहरुन्निसा परवेज जैसी प्रतिष्ठित लेखिका ने 'बिंदु में सिंधु' के नाम से अपनी संक्षिप्त टिप्पणी दी है, तो राज्यसभा सहित अनेक राष्ट्रीय टीवी चैनल की विख्यात राजनीतिक, सामाजिक विश्लेषक अमृता राय ने 'प्रभावी संचालन सजीव वर्णन अभिनव प्रयोग' के नाम से इन संग्रह के बारे में अपने विचार व्यक्त किए हैं मध्य प्रदेश गान के रचयिता दैनिक भास्कर भोपाल के पूर्व संपादक महेश श्रीवास्तव ने 'संचालन मानसरोवर के मोती' के नाम से अपनी टिप्पणी दी है, तो इस ग्रंथ के सभी लेखों को 'कथेतर गद्य की अप्रतिम कृति: छोटे मुंह छोटी सी बात' के नाम से एक जबरदस्त आलोचकीय टिप्पणी श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने लिखी है, जो अंतरराष्ट्रीय ख्याति के कला मर्मज्ञ और ललित निबंधकार हैं।

इन सब विद्वानों के लिखे परिशिष्ट को पढे बिना भी अगर किताब पढ़ना शुरू कर दी जाए, तो लेखक की विचारशीलता और अध्ययन बड़ा सराहनीय है। वह पानी पर बोलते हैं 'पानी का उत्पादन नहीं किया जा सकता, उसका संरक्षण ही उत्पादन है।' प्रकृति पर वे कहते हैं 'प्रकृति हमें जीवन देती है पर हम अपनी लोभी प्रवृत्ति के कारण प्रकृति को केवल विकृति दे रहे हैं।' फिल्म महोत्सव के आरंभ में कहते हैं 'इस सापेक्ष जगत में केवल प्रकाश ही निरपेक्ष है, प्रकाश और छाया का सहयोग ही माया है, यह संयोग ही अनंत चित्रों के रूप में आकाश के परदे से हमारी चेतना के परदे पर दुनिया के रूप में और सिनेमा के परदे से फिल्मी दुनिया के रूप में विंबित और प्रतिबिंबित है!'

इस संपूर्ण पुस्तक से गुजरने के बाद हमको नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की इस बात से सहमत होना पड़ता है कि 'सच यह है कि पहचान तो याद रखी जाती है, लेकिन उसे विस्मिल कर दिया जाता है, जो पहचान को बढ़ाने के लिए जिम्मेदार हैं तथा संभवत यही कारण है कि संतोष तिवारी ने अपने मंच संचालन के समय अपनी कुशल वक्ता शैली से जिस गद्य में पिरो कर अपनी वाणी से मंचासीन और मंच के सामने बैठे श्रोताओं को मंत्र मुग्ध किया उस गद्य के संकलन का नाम भी अपनी अक्रिंचन मुद्रा वाली भूमिका में 'छोटे मुंह छोटी सी बात' के रूप में रहते हैं!' (पृष्ठ xx)

...कथेतर गद्य के संबंध में उक्त संक्षिप्त विवेचन से ही स्पष्ट हो जाता है कि मंच संचालन की एक अपनी शैली है तथा जिसे आधुनिक समय में अपने आप को प्रतिष्ठित किया है, संप्रेषनीय बनाया है तथा जिसमें प्रयुक्त गद्य की जन सामान्य के बीच खासी लोकप्रियता भी है। आज हमारे समकालीन समय में प्रदेश में अनेक प्रतिष्ठित मंच संचालक हैं। यह मंच संचालक राष्ट्रीय स्तर से लेकर नगर नगर और गांव- गांव तक फैले हुए हैं और इन्होंने अपनी पहचान स्थापित की है। इस दृष्टि से मंच संचालन में प्रयुक्त गद्य और पद्य की सामाजिक शैली को कथित गद्य की विधा क्यों नहीं माना जाना चाहिए ? मेरे मत में नि:सन्देह यह कथेतर गद्य की एक प्रतिष्ठित तथा अभिनव विधा है। इस विधा की अपनी सामर्थ्य है तथा यह रचनात्मक कौशल की निश्चय ही एक संप्रेषण अभिव्यक्ति है। कथेतर गद्य की अन्य विधाओं की तरह साहित्य की विभिन्न विधाओं के बीच इसकी आवाजाही भी है तथा इसका सीधा संबंध जन सामान्य से है। इस कथेतर साहित्य की अन्य विधाओं की तरह साहित्य की एक ऐसी शाखा है इसका आधार स्थान, व्यक्ति और घटना के संबंध में वास्तविकता पर आधारित होता है। (पृष्ठ xxii) इस पुस्तक के बारे में इन विद्वानों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि यह पुस्तक केवल संचालन के लिए नहीं बल्कि लेखक द्वारा समय-समय पर बड़े मनन के बाद अभिव्यक्त की गई टिप्पणियों तथ्यों आदि के कारण याद की जाएगी। इस पुस्तक और इस नई विधा का हिंदी साहित्य में स्वागत किया जाएगा ऐसी आशा है।

समीक्षक : ख्यात कथाकार हैं।
दतिया (म.प्र.) मो: 9826689939

पुस्तक समीक्षा

महादेवी के संस्मरण: मानव और मानवेतर की रागात्मकता

-बी.एल.आच्छा

पुस्तक विवरण-

कृति	:	'महादेवी का मानवेतर परिवार'
लेखिका	:	श्रुति शर्मा
प्रकाशक	:	आर्यावर्त्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली
मूल्य	:	₹450/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण : 2022

हिन्दी की छायावादी काव्यधारा

जितनी स्वर्णिम समृद्ध है, उस काल का गद्य भी उतना ही गौरवमय। जो लोग छायावादी काव्य को ले चल मुझे भुलावा देकर के भ्रांत विश्लेषण से पलायनवादी कह देते हैं, उनके लिए छायावादी कवियों का गद्य सशक्त उत्तर-मीमांसा है। इन कवियों की राष्ट्रीय चेतना इस मानवीय बिन्दु पर ही तो केन्द्रित है''शक्ति के विद्युत कण जो व्यस्त विकल बिखरे हो निरुपाय। समन्वय उसका करें समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय।'' पर गद्य में यह चेतना लोकजीवन में उतरकर आई है। विशेषकर महादेवी के संस्मरणों- रेखाचित्रों ने तो हिन्दी गद्य को लोकहृदय तक ही नहीं, पशु पक्षियों की वेदना की समकक्षता तक पहुँचाया है। मानव तुम सबसे सुन्दरतम का गुंजार करती पंतजी की काव्य- पंक्ति भी तभी सुन्दरतम बनती है, जब महादेवी के घीसा लछमा से लेकर मेरा परिवार के पशुपक्षियों के संवेदनशील चरित्र को उकेरती है। श्रुति शर्मा ने अपने शोधकार्य महादेवी का मानवेतर परिवार में इसे तलस्पर्शी मानवीय संवेदन का विस्तार मानवेतर चरित्रों में बहुत गहराई से लक्षित किया है।

यह पुस्तक इस रूप में उल्लेखनीय है कि संस्मरण विधा को व्युत्पत्ति, संस्कृत साहित्य और हिन्दी की विविध विधाओं के सन्दर्भों से ही नहीं जोड़ा गया है, बल्कि अंग्रेजी साहित्य में इसकी अवधारणा से विधा के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। संस्मरण के मूल भाव को लेखिका ने एक पंक्ति में आबद्ध किया है- 'संस्मरण का सारा मामला भौतिक आबद्धता और रागलिप्तता का है।' तय है कि मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ, स्मृतियां, तन्मयता, स्मृति की तरंगें, प्रसंगों-चरित्रों के प्रति आसक्ति, स्मृति चिर्चा का शब्दांकन और निर्वैयक्तिक वैयक्तिकता तो व्यंजित होगी ही। तब यह राग भाव पूरी तटस्थता के साथ उन चरित्रों से स्मृतिमान हो जाएगा, जिनसे लेखक का लगाव रहा है। पर संस्मरण केवल व्यक्ति-चरित्रों तक सीमित नहीं रहे। उनका वर्ण्य-विषय आत्म-वृत्तान्त की खोल से निकलकर यात्रा- वृत्तान्त, रम्य प्रकृति या स्थान तक विस्तार पा जाता है। महादेवी के मानवेतर पात्रों में मनुष्य-संभवा

चित्तवृत्तियों का सहज चित्रण विलक्षण है। श्रुति शर्मा ने जशास्त्रीय सूक्ष्मताओं के साथ संस्मरण विधा का जितना विश्लेषण किया है, उतना ही महादेवी के मानव और मानवेतर पात्रों का भी।

विशिष्ट स्मृति, घटना, विशिष्ट चरित्र की सघन चेतना के साथ रागात्मक आसक्ति, आत्ममुग्धता से अनासक्त स्मृति की सजल सकारात्मकता और संवेदना का गहरा सन्निवेश जब स्मृति-राग बनने लगते हैं, तो शब्दचित्र चित्तवृत्तियों को भी मुखर कर जाते हैं। लेखिका ने अन्य विद्वानों की तरह माना है कि व्यक्ति के अतिरिक्त कोई जीव, कोई स्थान-स्थल, कोई प्रकृति क्षेत्र, कोई घटना, दृश्यादि भी चरिल नायक की तरह वर्ण्य विषय हो सकते हैं। संस्मरणात्मक साहित्य के तत्वों के विन्यास में चरितनायक से आत्मीय संबंध, मानव या मानवेतर या वर्गवादी धारणा से भिन्न कोई भी पात्र, दृश्यबंध, मूल्यचेतना के साथ पाठक की संवेदना का भावन, अनुभूत सत्य के पाठकीय रुपान्तरण की कलात्मकता, चरित्र के श्वेत-श्याम पक्षों का यथार्थ, चित्रमयता के रंगोज्ज्वल रूप, संस्मरणों में लेखक की उपस्थिति, विषयानुरूप भाषिक संरचना जैसे अनेक तत्वों का महादेवी के संस्मरणों के माध्यम से विवेचन दिशादर्शक है। इसे डॉ. कांतिकुमार ने लिंग्विस्टिक इंजीनियरिंग कहा है।

संस्मरण से निकटवर्ती बल्कि अंत: संक्रमित अनेक विधाएँ हैं। रेखाचित्र, ललित निबंध, रिपोर्ताज यात्रा वृत्तान्त जैसी विधाओं में ये अन्त: संक्रमण इसतरह एकमेक हो जाते हैं कि महादेवी के संस्मरणात्मक साहित्य को संस्मरणात्मक रेखाचित्र भी कह देना पड़ता है। पर इन सभी विधाओं में निबन्धकार की उपस्थिति बनी रहती है, उसका निर्वैयक्तिक व्यक्तित्व उत्कीर्ण होता चला जाता है। यों भी निबंध ही ऐसी विधा है, जिसमें लेखक अपने पाठक से सीधे रुबरु होता है। इनमे लेखक का समकाल भी झाँकता है, लोक से मुखातिब रहने की भावना के साथ सामाजिक साक्षात्कार भी। पर चित्तवृत्तियों का मनोविज्ञान तहों में बसा

रहता है, भाषा के चित्रमय स्थापत्य में। यही संस्मरणों का भावन-व्यापार है, जो सर्जक को पाठक से बिना किसी नाटक के पात्र या अमूर्त काव्य दर्शन के सीधे जोड़ता है। लेखिका ने संस्कृत अंग्रेजी और हिन्दी के प्रभूत संस्मरणात्मक साहित्य के माध्यम से इस विधा के तत्त्वबोध को स्पष्ट किया है। फिर भी रेखाचित्र और संस्मरण में अनेक विद्वानों के सूत्र-संकेतों को समेटते हुए यह बारीक पंक्ति दोनों विधाओं की विभेदक है- ''संस्मरण और रेखाचित्र के बीच भेद का सारा मामला लेखकीय संपृक्ति भाषिक अंकन की प्रक्रिया पर टिका है, अन्यथा दोनों में अभेद संबंध है।''

हिन्दी में संस्मरण साहित्य के युगीन विकास को देखकर लगता है कि इस विधा का कोष भी सुदीर्घ और प्रयोगधर्मी रहा है। भारतेन्दु काल के समृद्ध यात्रा वृत्तान्त, द्विवेदी युग में विषय विस्तार, प्रसाद-प्रेमचन्द युग में कलात्मक विन्यास के साथ प्रभूत रचनाएं हैं। प्रेमचन्दोत्तर युग में संस्मरण-रेखाचित्रों की युति वाले शिल्प के साथ मानव और मानवेतर पात्रों का विशिष्ट नियोजन और नयी शैलियों का विकास महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही इन विधाओं का समालोचना साहित्य भी प्रकर्ष पाता रहा। सचमुच में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इतने लेखकों की संस्मरणात्मक कृतियाँ हिन्दी की संजीवनी है।

महादेवी के संस्मरण साहित्य को लेखिका ने मानव और मानवेतर चरित्रों में विभक्त किया है। महादेवी की नौ गद्य कृतियों में चार संस्मरणात्मक कृतियाँ है, अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी और मेरा परिवार। मेरा परिवार' ही मानवेतर संस्मरण-कृति है। मानव केन्द्रित कृतियों में अतीत के चलचित्र तथा स्मृति की रेखाएँ साधारण वर्ग के निरीह पात्रों की आत्मीय स्मृतियाँ हैं, जिनके माध्यम से उत्पीडित- शोषित, अपमानित दबे-कुचले, प्रताड़ित और उपेक्षित लोगों को समाज और राष्ट्रीय मुख्यधारा में शामिल करना था। लेखिका ने उस काल के समाजशास्त्र को भी रेखांकित किया है, जो इन संस्मरणों का आख्यान है। अशिक्षा, अजानता अश्पृश्यता, गरीबी, उपेक्षित नारी, वर्ग भेद, जाति- प्रथा जैसे अनेक पक्ष भारतीय समाज की रुढिबद्धता और जड़ता के कारक रहे हैं। महादेवी के इस संस्मरणों में इनसे जुड़े पात्र उनकी आत्मीयता का स्पर्श पाकर गरीबी के बावजूद साहित्य का अभिजात्य बन गये है। हजारों पाठकों की संवेदनीयता और सामाजिक बदलाव की भावान्तर सगुणता। इनकी विशेषता संस्मरण और रेखाचित्र की संधि-रेखाओं में उतरता सामाजिक संवेदन है। इसीलिए ये व्यक्ति-चरित्र भी है और सामाजिकी का यथार्थ अंकन भी। वैयक्तिक वैशिष्ट्य यह कि महादेवी का समतामूलक ममत्व पाकर ये चरित्र जितने महनीय बने हैं, उतना सतरंगी कविता का अभिजात संसार भी नहीं। महादेवी के तरल कक्तित्व, उनकी संवेदनशीलता, व्यापक सहानुभूति, पारदर्शी निश्छल हृदय, परदुखकातरता, सूक्ष्म अन्वीक्षण शक्ति, वस्तु को सर्वांगता में देखने की व्यापक दृष्टि, नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा और लेखकीय कौशल जैसी विशेषताओं को लक्षित कर श्रुति शर्मा ने सैद्धान्तिक विमर्श की स्थापना को सिद्धि दी है। इन संस्मरणात्मक चरित्रों की सामाजिकी का यथार्थ बालविवाह, विमाता की क्रूरता, परित्यक्ता औरत की नारकीय दुनिया, अनमेल या बहुविवाह, अवैध मातृत्व, विधवा स्त्री को यातनाएँ जैसी सामाजिक विकृतियों का चित्रांकन है, जिसे लेखिका ने युगबोध के रूप में विश्लेषित किया है। श्रुति शर्मा का यह कथन केन्द्रीय है ''ये सभी संस्मरण नारी विमर्श के व्यावहारिक आख्यान हैं।'' इनका कथात्मक शिल्प और पात्रों की मन:स्थितियों की सजीव संवेदन- भाषा विशिष्ट है।

'स्मृति की रेखाएँ' के सात चरित-नायकों में जितने घर-परिवार के रिश्ते और पिछडे-उपेक्षित वर्ग का जनजीवन है, उसमें भीतर-बाहर के यथार्थ मनोविज्ञान और अर्थ समाजशास्त्र का गहरा सन्निवेश है। महादेवी व्यक्तिपात्र को वर्गीय पात्र बना देती है. मगर उन्हें बाहरी यथार्थ के साथ आंतरिकता को जोड़े बगैर नहीं लाती। कृषि संस्कृति और अशिक्षित जीवन की लांछनाएँ यह कहने को बाध्य कर देती हैं- वास्तव में गाँव का जीवन इतना उत्पीडित और दुर्वह होता जा रहा है कि उसमें मनुष्यता के विकास के लिए अवकाश मिलना ही कठिन है। लेखिका ने इन संस्मरणों के शिल्प की बीजभूमि में काव्यात्मकता सादृश्यमूलक प्रतीकों का नियोजन, लेखिका का सामाजिक दृष्टिकोण और संवेदन के हृदयतल की स्पर्शिनी अभिव्यक्ति का अवलोकन किया है। और तब वे महादेवी के संस्मरण 'जंगबहादुर' का यह वाक्य उद्धृत कर ही देती हैं- मनुष्य ने मनुष्य के प्रति अपने दुर्व्यवहार को इतना स्वाभाविक बना लिया है कि उसका अभाव विस्मय पैदा करता है और उपस्थिति साधारण लगती है।

पथ के साथी में सात समकालीन विशिष्ट साहित्यकारों के स्मृतिचित्र विलक्षण है। महादेवी के मानसपटल पर श्रद्धा से अंकित ये चरित्र आत्मीय हैं, पर उनके व्यक्तित्व पक्ष की कमजोरियों की अनदेखी नहीं करते ''निराला जी के सौहार्द और विरोध दोनों एक आत्मीयता के वृत पर खिले हुए दो फूल हैं। वे खिलकर वृत का श्रृंगार करते हैं और झड़कर उसे अकेला और सूना कर देते हैं।'' कवीन्द्र रवीन्द्र की व्यापक काव्य-सम्मूर्तता, प्रसाद का मनस्वी संकोची व्यक्तित्व, सुभद्राकुमारी चौहान का राष्ट्रीय चेतना के साथ सामाजिक बंधनों को ध्वस्त करने वाला तेज विशिष्ट झंकृति बन पड़े हैं। पर सभी संस्मरणों में कथात्मक विन्यास में आत्मीयता के साथ व्यक्तित्व के अन्तर्बाह्य को पहचानने की दृष्टि इन संस्मरणों को कुछ अलग-सा बनाती है। इसीलिए लेखिका ने संस्मरण विधा के तत्वों से अलग इनकी शक्ति का मूल्यांकन दिया है- ''इन संस्मरणों की असल ताकत स्मृत्य की यथार्थ और सजीव तस्वीर का चित्रांकन को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।''

इस पुस्तक का केन्द्रीय विमर्श तो संस्मरण विधा में मानवेत्तर पात्र और महादेवी के मानवेतर संस्मरण ही है। ''मेरा परिवार'' महादेवी की अनूठी संस्मरण-कृति है, जो मानवेतर पात्रों को अपने परिवार में न केवल मनुष्यों की तरह बसाती है, बल्कि उनके भीतर मानवीय चरित्र की सभी चित्तवृत्तियों और कारनामों की आत्मीयता को बिना उद्विघ्न हुए सहजता से चित्रित करती हैं। महादेवी लिखती है- ''पक्षी जगत में ही नहीं, पशु जगत में भी मनुष्य की ध्वंसलीला ऐसी ही निष्ठुर है। पशु जगत में हिरण-जैसा निरीह और सुन्दर दूसरा पशु नहीं है- उसकी आँखें तो मानो करुणा की चित्रलिपि हैं। परन्तु इसका भी गतिमय, सजीव सौन्दर्य मनुष्य का

मनोरंजन करने में असमर्थ है। मानव का जो श्रेष्ठतम रूप है, जीवन के अन्य रूपों के प्रति इतनी वितृष्णा और विरक्ति, और मृत्यु के प्रति इतना मोह और आकर्षण क्यों ?'' यह केवल वैष्णवी आस्था की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि महादेवी के गद्य के भीतर का काव्यात्मक दर्शन है। यह दर्शन पशुबलि और पक्षियों के शिकार तक ही नहीं ले जाता बल्कि संवेदनात्मक, धरातल पर मानवेतर राग की सहृदयता को भी काम्य बनाता है। लेखिका ने संस्कृत और हिन्दी साहित्य की प्रमुख रचनाओं में पशु-पक्षियों के प्रति व्यक्त रागात्मकता का उल्लेख पंचतंत्र की कथाओं से लेकर कामायनी, गोदान, दो बैलों की कथा और पूस की रात तक किया है।

इस पुस्तक का विशिष्ट अध्याय है- मानवेतर संस्मरणों के पात्र नीलकंठ (मोर) गिल्लू (गिलहरी) सोना (हिरना) दुर्मुख (खरगोश) गौरा (गाय) नीलू (कुत्ता), निक्की (नैवला) रोजी (कुत्ती) और रोजी (टट्टू)। पर इनके साथ चित्रा (बिल्ली) राधा (मोरनी) लक्का (कबूतर) कुब्जा (मोरनी), कजली (कुत्ती) गोधूली (बिल्ली) हेमंत बसन्त (कुत्ते) फलोरा (कुत्ती) हिमानी (खरगोश) लालमणि (बछडा) लूसी (कुत्ती)

जैसे इक्कीस पात्र भी शामिल हो गये हैं। इन पात्रों के नामोल्लेख में एक घरेलू आत्मीयता, नार्मा के विकार में वात्सल्य, संस्कृत नामों में अन्वर्थ- नाम्नीयता अर्थात् चरित्रानुसार नामकरण विशिष्ट है। इन सभी की प्रकृति अनुरोधी-विरोधी भी है। पर बकौल बिहारी के ये महादेवी के परिवार के तपोवन के पात्र हैं। इनकी परिस्थितियों, साहचर्य के प्रसंग, स्वभाव, प्रेम, झगड़े और यहाँ तक कि मनोभावों को भी बहुत बारीकी से व्यक्त किया गया है। इन सभी पात्रों के स्वभाव और साहचर्य, राग-विराग की कुंडली का संक्षिप्त परिचय देकर उनके भीतर की चित्तवृतियों में मानव मन और प्रकृति का इजहार किया है- दुर्मुख (खरगोश) अपनी जाति के स्वभाव के सर्वथा विपरीत क्यों था। संभवत: उसके जन्मते ही बिल्ली का उसके मां-पिता और भाई- बहनों की हत्या का नृशंस कृत्य रहा होगा। क्या पता, माँ की स्नेह छाया में बड़े होने पर शायद वह खरगोश दुर्मुख इतनी नकारात्मक प्रकृति का और अकारण क्रोधी न होता। यहाँ महादेवी का सूक्ष्म अवेक्षण और उनकी सहृदयता का मानुषभाव एकमेक हो जाते हैं। लेखिका ने प्रत्येक मानवेतर पात्र की सहज-असहज, अनुरोधी विरोधी चारित्रिक विशिष्टिताओं का वैसा ही आकलन किया है, जैसा संस्मरणों के मानव चरित्रों का।

कथातत्त्व तो इनकी दैनंदिन चर्या में ही रुपायित है।

इन मानवेतर संस्मरणों के आकलन में लेखिका ने उन सूक्ष्म बिन्दुओं को रेखांकित किया है, जो इन चरित्रों को संवेदनीय पठन से जोड़ देते हैं। संवेदना की सघनता, सर्जक की सहृदय वैचारिकता, परिवेश की निर्मिति, चित्तवृत्तियों के अनुरुप सूत्र-वाक्य, कथातत्त्व का नियोजन और फ्लैश बैंक पद्धति का प्रयोग, विशिष्ट पशु की जाति और सामूहिक विशेषता का परिचय, मानवीय अनुभूति अनुरूप संवेदना की तलस्पर्शिता, आधुनिक मानव सभ्यता और मूक प्राणियों के बीच मूल्य चिन्तन, मानवेतर पात्रों की मनोभूमि का प्रत्यंकन, पशु-पक्षी मनोविज्ञान का निरपेक्ष अवलोकन, जैसी अनेक विशेषताएँ इन संस्मरणों के चरित्रों को जीवन्त मानवीय धरातल देते हैं। दरअसल लेखिका ने इन मानवेतर पात्रों की जीवन्त रचना में महादेवी के व्यक्तित्व को भी तलाशा है। महादेवी का जीवन के प्रति महादेवी का सूक्ष्म दृष्टिकोण, मानवेतर प्राणियों के मनोविज्ञान की पहचान, पारिवारिक सदस्य की तरह नामकरण और आत्मीयता का संसार, पौराणिक एवं साहित्यिक-सांस्कृतिक परम्परा में उनकी उपस्थिति, परिवेश एवं प्रकृति के बीच चिन्तन के सूत्र, मानवेतर पात्रों के साहचर्य से आनन्द तत्व की अनुभूति जैसे अनेक पक्ष महादेवी के व्यक्तित्व की अंतर्भुक्ति से ही स्पर्शिल बन पाये हैं। सहृदय मानव और मानवेतर पात्रों की संधि का यह तपोवन इन्हें आधुनिक सभ्यता तक भी ले आता है, जहाँ वैचारिकी भी है और गहरे व्यंग्य भी। पर गद्य विधा में चित्रात्मकता के साथ महादेवी का यह स्पर्श पशु-पक्षियों से प्रेम और मानवीय संस्कृति के संवेदनीय रंग पाठक में उतर आते हैं- मैं अपने शाल में लपेटकर उसे (गिल्लू-गिलहरी) संगम ले गयी। जब गंगा की बीच धारा में उसे प्रवाहित किया गया, तब उसके पंखों की चन्द्रिकाओं से प्रतिबिम्बित होकर गंगा का चौड़ा पाट एक विशाल मयूर के समान तरंगित हो उठा...। महादेवी के संस्मरणों में यही मानव और मानवेतर की संधि है और मिलाप की सामासिकता। इस रूप में यह पुस्तक पठनीय ही नहीं, अकादमिक अनिवार्यता की पोषक है।

फ्लैट नं-701टॉवर-27, नॉर्थ टाउन अपार्टमेंट,
स्टीफैशन रोड (बिन्नी मिल्स)
संपर्क: पेरंबूर, चेन्नई (तमिलनाडु)-600012
मो-9425083335

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कलासमय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

गुजरना आवाज़ की दुनिया से

–सोमदत्त शर्मा

पुस्तक विवरण–

कृति	:	'माइक का दीवाना'
लेखक	:	नीरज शर्मा
प्रकाशक	:	दी राइट ऑर्डर पब्लिकेशंस, कोरमंगला, बैंगलोर
मूल्य	:	₹350/–
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण : 2023

आवाज़ की दुनिया निराली है। उससे भी निराले होते हैं वे लोग जो इस दुनिया की दीवानगी में जीवन गुजार देते हैं। नीरज शर्मा आवाज़ की दुनिया के ऐसे ही कलाकार हैं जिन्होने अपना पूरा जीवन आवाज़ की दुनिया में गुजारा है। इसी दुनिया के सम्पर्क में आकर उन्होने आवाज़ के स्वरूप को पहचाना। शब्द, शब्दों से बनने वाले वाक्य, वाक्यों के बीच आने वाले कौमा, विराम, अर्धविराम और पौज़ के महत्व को पहचाना। बोलते समय शब्दों और सांसों की अंतर्क्रिया को समझा। इनके प्रति होने वाली असावधानी से अर्थ का अनर्थ कैसे हो जाता है इसकी बारीकियों से परिचित हुए। कलाकार बनने के बाद ऐसी सावधानियों को ध्यान में रखा और आज वे आवाज़ की दुनिया का चिर परिचित चेहरा बन गये हैं। आज श्रोता उन्हें उंनके चेहरे से भले न जाने लेकिन आवाज़ सुनकर बता सकता है कि ये आवाज़ नीरज शर्मा की ही आवाज़ है। श्रोता नीरज शर्मा की आवाज़ को दूसरी आवाज़ों से अलग पहचान सकता है।

नीरज शर्मा अच्छे प्रशासक रहे हैं। वे इसका परिचय 'जी न्यूज़' के कार्यकारी अधिकारी के तौर पर कार्य करते हुए पहले दे चुके थे और अब एक सधे हुए लेखक के रूप में भी उन्होने अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है। हाल में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'माइक का दीवाना' दी राईट ऑर्डर पब्लिकेशन्स, बैंगलोर से प्रकाशित हुई है। पुस्तक के शुरू में ही लेखक लिखता है– ''ये कहानी मेरे यानी नीरज शर्मा और माइक्रोफोन के बीच के अनंत प्रेम की है।'' तेरह अध्यायों में बंटी इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर माइक के प्रति उनकी दीवानगी की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। पुस्तक के हर अध्याय का शीर्षक माइक के प्रति उनके प्रेम के एक खास पहलू को उजागर करता हुआ दिखाई देता है। पहले अध्याय का शीर्षक है– अंकुर। इसमें रेडियो के प्रति उनके प्रेम के अंकुरित होने की रोचक कथा है कि कैसे एक सात साल का बच्चा रेडियो से आती आवाज़ों के प्रति आकर्षित होता है। फिर रेडियो में बोले गये सम्वादों को दोहराता है। और, इस सुनने, दोहराने की प्रक्रिया के भीतर से लेखक के हृदय में एक संस्कार जड जमा रहा था। उसीने उसे स्कूल के उत्सव में प्रसिद्ध लेखक उपेंद्र नाथ 'अश्क' के नाटक 'अधिकार का रक्षक' में मुख्य कलाकार की भूमिका में ले जाकर खड़ा कर दिया। उस अभिनय के कारण मिले बेस्ट एक्टर अवार्ड ने एक मित्र की सहायता से आकाशवाणी के दरवाजे तक पहुंचा दिया। और एक बार सिलसिला शुरू हुआ तो बाल कलाकार से युववाणी और वहां से बडे बडे कलाकारों के साथ खडे होकर बडे नाटकों में किरदार निभाने तक का होसला मिला। और यहीं से नीरज को मिला आवाज़ की दुनिया का वह बेहद्दी मैदान जो हमारे समय की दुनिया का अहम हिस्सा बन चुका है । उसमें आकाशवाणी के कार्यकर्मों से लेकर विज्ञापन की निजी दुनिया, एन.सी.ई.आर.टी के शैक्षिक कार्यक्र्म, ज्योग्राफिकल चैनल, प्राइवेट प्रोड्क्शन के घरानों की नाट्य श्रंखलायें, स्वयम के प्रोडक्शनसंस, जिनमे बंगला की सुप्रसिद्ध लेखिका और ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित आशापूर्णा देवी के प्रसिद्ध उपन्यास 'प्रथम प्रतिश्रुति' तथा और भी कई नाट्य श्रृखलायें शामिल रहीं। रेडियो की दुनिया के भीतर से नीरज को दृश्य माध्यमों तक पहुंचना आसान हो गया ।

लेकिन, यह पुस्तक का एक हिस्सा है जिसमें बालक नीरज शर्मा 'के कलाकार नीरज शर्मा' बनने तक की कथा है। पुस्तक का दूसरा पहलू है इस रास्ते में नीरज की विख्यात नाटककार सत्येंद्र शरत से भेंट। उनके व्यक्तित्व का,नीरज के निजी व्यक्तित्व और कला व्यक्तित्व पर जो प्रभाव पडा उसका उन्होने बडी श्रद्धा के साथ वर्णन किया है। रेडियो के इतिहास में सत्येंद्र शरत एक बड़ा नाम है। नीरज उन्हें अपना गुरु मानते हैं । नीरज लिखते हैं

''शरत जी से मुझे अपने जीवन में बहुत कुछ सीखने को मिला। उनकी कही हुई छोटी से छोटी बात में भी एक गूढ अर्थ छिपा होता था।'' (पृष्ठ 39)

शरत जी ने ही उन्हे पाठ्यक्रम की किताबों से बाहर निकलकर पढ़ने कि व्यापक दुनिया से परिचित कराया। पढ़ने की आदत डलवायी। जीवन में अनुशासन और स्वाभिमान के साथ जीवन यापन करने के अलावा आवाज़ की दुनिया की ऐसी बारीकियों से परिचित कराया जो आज भी कलाकार नीरज के जीवन की थाती हैं। वे लिखते हैं–

''आकाशवाणी में मुझे श्री सत्येंद्र शरत जी की छत्रछाया मिली। उनके सुरक्षित और कुशल हाथों के द्वारा मेरी आवाज़ को तराशा गया। जैसे एक कुशल कारीगर अपने हाथों में आयी साधारण सी चीज़ को नायाब कलाकृति बना देता है, ठीक वैसे ही शरत जी ने मेरे अंदर छिपे

हुनर को पहचाना और फिर अपनी कारीगरी, अपने मार्गदर्शन से उसे ऐसे गढ दिया जैसे जोहरी एक पत्थर को तराश कर हीरा बना देता है। उनकी बदौलत ही मैं आकाशवाणी नाटकों के उस प्लेट्फार्म पर सितारे सा चमकने लगा जिस प्लेट्फार्म का पूरी दुनिया में डंका बजने लगा था।'' (पृष्ठ 40)

पुस्तक का तीसरा महत्वपूर्ण पहलू आवाज़ की दुनिया से जुडे उन ऐतिहासिक महत्व के निर्देशकों और कलाकारों के व्यक्तित्व और योगदान से परिचित कराना रहा है जिन्होने नये जमाने की आवाज़ की दुनिया को एक नयी दिशा प्रदान की है। उन्होने एक तरफ निर्देशक के तौर पर सत्येंद्र शरत जी के साथ चिरंजीत, एस.एस.एस. ठाकुर और दीनानाथ जैसे दिग्गज निर्देशकों की निर्देशन कला के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है तो दूसरी तरफ उस समय के दिग्गज कलाकारों विनोद शर्मा, राजेश्वर नाथ.राजकुमारी प्रसाद, मधु मालती, बी.आर. नागर, सी.बी. गुप्ता, बी.एम. बडोला, सुरेंद्र सेठी, नादिरा बब्बर, राज बब्बर, ओम शिवपुरी, सुधा पुरी, सलीमा रजा, टी .आर. मेहता, जैमिनी कुमार वीरेंद्र, मंजु मैंनी, अरुणा कपूर, ब्रिजेंद्र मोहन और बी.एल. टंडन जैसे न जाने कितने ऐसे कलाकारों को याद किया है जो अब लोगों की स्मृति से लुप्त होते जा रहे हैं। यहाँ तक कि उन्होने गोपाल सक्सेना जैसे व्यक्ति/ कलाकार की कला को भी याद किया है। गोपाल सक्सेना का आकाशवाणी में कोई बड़ा पद नहीं था लेकिन हुनर के मामले में उनका कोई सानी भी नहीं था। उनके जैसे एफेक्ट्समेंन बिरले बिरले ही होते थे।

पुस्तक का चौथा पहल आकाशवाणी के कार्यक्रमों में भाषायी सम्वेदंशीलता का परिचय देना रहा है। इस सम्बंध में नीरज शर्मा ने दिल्ली के एक इलाके में बोली जाने वाली 'करखंदारी' बोली का उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं ''करखंदारी बोली का अपना एक अलग अंदाज़ और लहजा है। पुरानी दिल्ली में जामा मस्जिद, बल्ली मारान, चितली कबर, सिर की वालान, कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां ये आज भी बोली जाती है। लेकिन अब ये बोली धीरे धीरे विलुप्त हो रही है।''(पृष्ठ 49) वे आगे लिखते हैं –

''करखंदारी बोली का अपना एक अलग ही व्याकरण था। इस बोली का सारा ज़ायका इसके लहज़े और शब्दों के बड़े ही अलग ढंग के उच्चारण में छुपा था। देखा जाय तो इस तरह की बोली हमारे लिये अनुपम धरोहर है।''(पृष्ठ 49–50)

इस बोली के ज़ायके को आप तक पहुंचाने के लिये उन्होने 'शद्दू खलीफा' की एक झलकी के एक दृश्य को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हुए लिखा है –

शद्दू खलीफा के घर मुंतियास पहलवान पहुंचे और उन्होने पूछा– ''भाई ऐसा है शद्दू खलीफा आओ चलो तारों की छाओं में घूमने चलें।''

तो शद्दू खलीफा उनसे कहते हैं–

''हाँ, चलो, लेकिन ये तो बताओ हम जायेंगे कैसे ?''

जवाब में मुंतियास पहलवान कहते हैं –

''जिस तखत पे तुम बैठे हो बिस तखत के चारों पायों में हम खतंगे बांध देंगे। तखत पर सब सामान रख लो और जैसे ही ऊपर को जाना होगा नीचे से खतंगों में आग लगायेंगे और आग लगाने के बाद वो तखत ऊपर की तरफ उड लेगा और हम पोंच जायेगे, आसमान में। ''

इस वार्तालाप को सुनकर शद्दू खलीफा की बीवी नाराज़ होकर बुरा भला कहती है तब पत्नी से डाट खाने के बाद शद्दू खलीफा अपने मित्र मुंतियास पहलवान से कहते हैं –

–''अबे, मुंतियास, तू ऐसा कर बाहर को चल और मैं आ रिया हूँ अभी ''

ये सुनकर मुंतियास पहलवान घर के बाहर खड़े होकर उनका इंतजार करते हैं और जब काफी वक्त बीत जाता है तो वो चिढ़कर शद्दू खलीफा को आवाज़ लगाते हुए कहते हैं –

''अबे, आ रिया ए न जा रिया ए खामख्वाह नूई परेशान करे जा रिया। अबे, इतकू आ जल्दी छुरी तले दम ले बाहर कू आके।'' (पृष्ठ 50–51)

नीरज लिखते हैं– ''शद्दू खलीफा जैसी झलकियां अपने आप में कला का एक नमूना थीं जिन्हें लिखने और बोलने वाले की कला रखने वाले कलाकार आज के आधुनिक समय में लगभग न के बराबर हैं।''(पृष्ठ –51)

नाटक की तैयारी से लेकर प्रोडक्शन तक की बारीकियों का बडी सरल भाषा में वर्णन पुस्तक की अन्यतम विशेषता है। इसी तरह नाटक और विज्ञापन, कोमर्शियल प्रोग्राम और शैक्षणिक प्रोग्राम,अन्य देशी विदेशी भाषाओं के सीरियलों की डबिंग की बारीकियों का जिस सरलता से वर्णन किया गया है, काबिले तारीफ है।

यों तो 'माइक का दीवाना' एक बच्चे के गम्भीर कलाकार बनने तक का सफर बयां करती है। लेकिन इसे जिस तरह बयां किया गया है उसमें भारतीय रेडियो नाटक की विकास यात्रा की एक झलक दिखाई देती है। रेडियो की नाट्य विधा से जन्मी झलकी और विज्ञापन जैसी विधाओं के विकास की कहानी भी इसका हिस्सा बना गयी है। उनके बीच के बारीक भेद। आवाज़ और सांसों के मेल से उपजी भाव सम्वेदना। तथा, बदलती तकनीक के जमाने में पुरानी तकनीक जिसमें व्यक्ति के हाथों और मानसिक एकाग्रता के कौशल की आवश्यकता होती थी उसकी गम्भीर और प्रेरणादायी चर्चा भी किताब में की गयी है। नयी तकनीक और सम्वेदना को लेकर गम्भीर इशारे भी किये गये हैं। नये कलाकारों में बढती कला से अधिक व्यावसायिक बुद्धि पर की गयी गम्भीर टिप्पणी भी गौर करने लायक है।

लेखक लम्बे समय तक आकाशवाणी से जुडे रहे हैं। आज भी जुडे हैं। उसने ने आकाशवाणी का वैभव काल देखा है। और अब उसके स्खलन के दौर को भी महसूस कर रहे है। उसने आकाशवाणी के संग्रहालय में तमाम पुरानी नाट्य विधाओं की रेकार्डिंग्स की अनुपस्थिति के कारण हुई अपूर्णीय क्षति को लेकर भी गम्भीरता चिंता व्यक्त की है। उसका मानना है कि संग्रहालय होते ही इसलिये हैं कि वह इतिहास को संजोकर रखे ताकि आने वाली पीढियां उससे अपने अतीत को समझने की प्रेरणा ले सकें। आकाशवाणी संग्रहालय की दयनीय स्थिति के प्रति उनकी चिंता जायज है।

पुस्तक की भाषा इतनी सरल, सहज और मीठी है कि कोई भी व्यक्ति एक बैठक में, उपन्यास की तरह,उसे पढ सकता है। इसमें पुराने लोगों के योगदान को रेखांकित किया गया है तो नये कलाकारों को भी बहुत कुछ सीखने के लिये सामग्री दी गयी है।

प्रसारण पर कहने को तो बहुत सी पुस्तकें हैं। रेडियो नाटक पर भी हैं। कई विश्वविध्यालयों में रेडियो नाटक पढाया भी जाता है लेकिन जिस तकनीकी बारीकी की ओर पुस्तक विस्तार से चर्चा करती है, अन्यत्र शायद ही मिले।

संपर्क: आई–94 गोविंद्पुरम गाज़ियाबाद(उ. प्र.) 201013
मो. 8377003475

■

पुस्तक समीक्षा

रेवा तट की सौंधी गंध वाली कविताएँ

-शिशिर उपाध्याय

पुस्तक विवरण-

कृति	:	'सभ्यता के अवशेष'
लेखिका	:	क्रांति कनाटे
प्रकाशक	:	बोधि प्रकाशन जयपुर
मूल्य	:	₹200/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण : 2023

अपनी माटी की सौंधी सुगंध लिए कवयित्री क्रांति (येवतीकर) कनाटे का काव्य संग्रह 'सभ्यता के अवशेष' मेरे हाथों में हैं, उँगलियों के पोर जिन्होंने पुस्तक को आँखों के समक्ष उठा रखा है सुरभित हो गए हैं, मन महक उठा है और आँखें नम हैं। कहाँ से शुरू करूँ क्योंकि क्रांति की कविताएँ इतनी सूक्ष्म हैं कि उन्हें बहुत गहराई से पढ़ना ,पकड़ना ,समझना पड़ता है, और अर्थ में इतनी विराट कि उनकी व्याख्या सहज नहीं है।

क्रांति एक साक्षात कवयित्री है, उसके पास शब्दों की अथाह संपदा है किंतु वह अपनी कविताओं में उन्हे व्यर्थ नहीं परोसती, वह अपनी कविता में भाव तत्त्व को ज्यादा महत्त्व देती है, इसीलिए ये कविताएँ सरिता बन कर आँखों से बह निकलती हैं,,, एक कविता से शुरू करता हूँ, जिसे मैं अक्सर उद्धृत करता हूँ- 'अच्छा नहीं किया'

तुमने मेरे कंधे से/ बोझ उतारना था,,

तुमने मेरे कंधे से/ सिर उतारकर/ अच्छा नहीं किया ।

मात्र सोलह शब्दों में राजनैतिक कटाक्ष पर इससे बड़ी कविता कोई नहीं लगती मुझे और अपनी बात को इतनी सहजता से इतने कम शब्दों में कह देने की कला का नाम ही क्रांति है, इसी तर्ज पर एक और कविता है -'तुमसे बिछड़कर'-

'तुम मेरी मिट्टी थे/ पानी थे, ,आग थे/ हवा थे या आकाश ?

तुमसे बिछड़कर/ फिर यह देह कभी/ पंचमहाभूतों की नहीं लगी ।

सच ही तो है, विरह के इस अभिजात रूप में आँच कहाँ लगती है।

'सभ्यता के अवशेष' शीर्षक कविता से प्रारंभ यह संग्रह मानवीय अनुभूतियों और संवेदनाओं से लबालब है।

'मुखौटे' शीर्षक कवितामें वे कहती हैं--

'पहले झूठ बोले परायों से/ फिर सच छुपाए अपनों से/ और अब यह हालत है कि/ घर के घर में भी

मुखौटे लगाए रहता है आदमी/ चेहरों से भारी हो गए हैं मुखौटे/कभी तो थकेगा वह इनका / भार ढोते-ढोते।

और फिर अपनी पहचान तलाशेगा।'

प्रायश्चित पर 'धीरे-धीरे' की उनकी ये पंक्तियाँ सार्थक हैं-

धीरे -धीरे खुलता है/ एक-एक दरवाज़ा वजूद का/ धीरे -धीरे बिखरता है हर तिलिस्म/ टूटता है हर भरम,

और फिर रह जाता है इंसान अकेला/ अपनी भूलों के साथ /अपनी यादों के साथ ।

'अभी तो', शब्द की सुंदर व्याख्या परिभाषित करती है---

अभी तो शब्द उतरे हैं/ पन्नों पर कविता बनकर / मगर जब वे धार बनकर/ चलेंगे सड़कों पर

उतरेंगे गलियों में/ तब तुम्हारा कोई अन्याय/ उनके सामने ठहर नहीं पाएगा/ और न ही चलेगा तुम्हारा कोई झूठ उनके आगे/ शब्दों में अगर आँच हो/ तो उन्हें तलवार बनते / देर नहीं लगती।।

नारी के पक्ष में यह कविता आश्वस्त करती है-

देखना! एक दिन ज़रूर आएगा,/ जब औरत सिर्फ इसलिए/ गुनाह के कटघरे में नहीं खड़ी होगी / क्योंकि वह औरत है/ और न ही

आदमी बैठेगा/इंसाफ की कुर्सी पर/ सिर्फ इसलिए कि वह आदमी है /देखना! एक दिन ज़रूर आएगा/ जब आदमी अपने सच का इस्तेमाल/ ढाल की तरह और / औरत के सच का इस्तेमाल/ तलवार की तरह नहीं कर पाएगा। देखना! एक दिन ज़रूर आएगा।,

क्रांति की कविताओं में घरु परिवेश की अनुभूतियाँ उमड़-घुमड़कर सामने आती हैं, सच ही तो है अतीत जब मन के घड़े में मथता है तो, स्मृतियों का माखन ऊपर तैरने लगता है, माँ रेवा तट से लगे सनावद कस्बे में एक संस्कारवान सुशिक्षित येवतीकर परिवार में जन्मी क्रांति इसीलिए बार-बार लौटती है अपनी कविताओं में, यादों की धुंध को हटाते हुए, अपने गाँव की माटी में- 'इस बार' में वे कहती हैं-

सच कहती हूँ / इस बार गाँव जाऊँगी/ तो पूरी की पूरी /वापस नहीं लौटूँगी,/इस बार पहली बारिश के बाद/ जब खेत पर चमकेगा पहला सूरज / मैं सौंधी गीली मिट्टी में/एक मुट्ठी याद बोकर आऊँगी।

अपनी माटी की गंध में सराबोर होने का आनंद ही कुछ और है। उन्होंने अपने अतीत के आंगन में झाँकते हुवे ,माँ , पिता, ताऊजी, पर जो शब्दों की लड़ियाँ पिरोई हैं, वे हमे भी अपने छुटपन की यादों से जोड़ती हैं और आँखों को पानीदार करती हैं। हम सभी स्वांतत्र्य काल के पश्चात 50/60/70 के दशक में जन्मे व्यक्तियों की यही आपबीती है, जो क्रांति ने कितनी सहजता से कह दी है, अपनी कविता 'माँ' में-

इससे पहले कि/ हम सँभालते उसे/ उसने सँभाला हमें/ भरकर हम चारों को / अपनी दो बाँहों में/ कहा उसने, क्यों रोते हो/ मैं जो हूँ अभी'/ और अब तक/जो माँ पृथ्वी थी हमारे लिए/ वह बन गई आकाश भी।

क्रांति की ये कविताएँ उनके मुख से सुनने में और आनंद देती हैं,काव्य पाठ करते समय उनकी वाणी में संवेदना के स्वर हमें अंतर तक भिगो देते हैं। क्रांति की कविताएँ हमें उस व्यतीत में ले जाती हैं, जहाँ नदी किनारे गाँव होते थे, जहाँ हमारी नींद सूर्योदय के पहले घड़े में दूध के दुहने और दही बिलौने की निर्मल ध्वनि से खुलती थी, जहाँ कच्चे मकानों के खपरैलों से उठता धुआँ, सूर्य किरणों को सतरंगी बनाता था, माटी के काचे चूल्हे पर भात खदकता था और बूढ़े दादा, दादी उठकर प्रभाती गाते थे। क्रांति अपनी कविताओं में गाँव के तट पर बहती नदिया में अवगाहन करती अनुभूत होती है।तभी तो वह बार बार कहती है--

'बस वही अच्छा था/ मेरा गाँव ,गाँव की मिट्टी / मिट्टी के घर/ घर में रहते लोग/लोगों के मन/ मन में पलता प्यार / प्यार की खुशबू/, खुशबू की कोई जात न पात.... हाँ,गाँव से बिछड़ने पर ही वह कह पाती है--

'वह पेड़ / अब कट गया है/ पर आज भी उस जगह,/ उसकी याद/ छाँव देती है मुझे ।

कुछ रचनाएँ प्रश्न छोड़ जाती है--

मेरा तुम्हारे पास आना/ तीर बिंधे हंस का/ सिद्धार्थ के पास आना था तुम्हारा मुझे/ देवव्रतों को सौंप देना/ पता नहीं क्या था ?

'शब्द-राम' में कितने गहरे अर्थ हैं---

'यहाँ कोई भरत नहीं है/ जो राम की पादुकाएँ / सिंहासन पर रख/ राजपाट चला सके

सुनो! /मेरे मन की अयोध्या से/ निर्वासित मत करो / शब्द --राम को ।

और यह नारी के अस्तित्व पर प्रश्न पूछती कविता झकझोरती है, अंतर्मन तक-

तुमने कहा,/ हर अहिल्या का/ एक राम होता है /सच है/ परन्तु उससे पहले/ हर अहिल्या का जो/

एक इंद्र होता है/ एक गौतम होता है / उसका क्या ?

'कविता का कोई पर्याय नहीं है' शीर्षक से लिखी प्रस्तावना में क्रांति स्वयं कहती है हाथ में लेखनी लेकर कभी कोई कविता नहीं लिखी और मात्र दो अपवादों को छोड़कर न ही कभी उनमें किसी संशोधन की आवश्यकता महसूस हुई। हर कविता मुझे एक पके-पकाए फल की तरह हाथ लगी और मैंने भी उसे किसी प्रसाद की तरह श्रद्धा भाव से स्वीकारा।

देश विदेश में हुई विभिन्न दुर्घटनाओं यथा कच्छ में आया भूकंप, वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमला, और कारगिल पर उनकी कविता करुणा के रूप में 'नहीं, आज नहीं, फिर कभी, फिर कभी मैं लिखूँगी तुम्हारी याद में कविता... शब्द-शब्द विगलित होकर कागज़ पर उतर कर जम गई है, इस लंबी कविता में गहरा विलाप है, पश्चाताप है, अतीत की याद है और एक अंतर्द्वंद है। संग्रह की अंतिम कविता एक विशेष अरदास के साथ खत्म होती है,,

'मुझे तुम्हारे लिए / लिखनी है एक कविता/ जो बिना पोंछे ही सोख सके/तुम्हारे माथे का पसीना/मुझे तुम्हारे लिए/ बुनना है इक सपना/ तुम्हें अच्छा लगे/ जिसे पूरा करना/मुझे तुम्हारे लिए/ करनी है एक प्रार्थना/ जिसे सुनते ही ईश्वर कह सके/ तथास्तु ! तथास्तु ! तथास्तु !!!

संग्रह की कुल 113 रचननाएँ अपने आप में अपनी बात कहने में समर्थ हैं, और पाठक को बाँध कर रखती हैं।

भाषा की शुद्धता की दृष्टि से परिपूर्ण, सुस्पष्ट, सुवाच्य यह काव्य संग्रह साहित्य जगत को प्रदान करने हेतु श्रीमती क्रांति कनाटे और बोधि प्रकाशन, जयपुर का हार्दिक अभिनंदन।

संपर्क: 21, सृजन शर्मा कालोनी, बड़वाह (जिला खरगोन) 451115
मो. 9926021858

■

पुस्तक समीक्षा

रहस्यमयी दास्ताँ की रपट ऑपरेशन कोरोना

-डॉ. अरूण कुमार वर्मा

पुस्तक विवरण-

कृति	:	'ऑपरेशन कोरोना (उपन्यास)'
लेखक	:	अरूण कुमार सिन्हा
प्रकाशक	:	विद्याश्री पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
मूल्य	:	₹995/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण : 2023

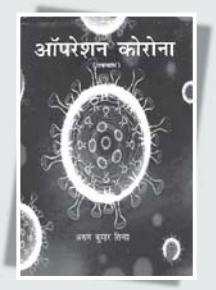

'ऑपरेशन कोरोना' अरूण कुमार सिन्हा जी का उपन्यास है। इसका प्रकाशन विद्याश्री पब्लिकेशंस, संगम विहार नई दिल्ली 2023 में हुआ है। इसके पूर्व में सिन्हा जी ने कोरोना पर आधारित 'इस सुबह की रात नहीं' तथा 'तीसरी लहर' पुस्तक लिखकर कोरोना की व्यापक पड़ताल प्रस्तुत की है। कोरोना पर जितने वैज्ञानिक तथ्यों का संग्रह इन्होंने किया है शायद ही कोई लेखक इतनी गंभीरता से इतनी अधिक जानकारियाँ उपलब्ध कराई होगी। विवेच्य उपन्यास में कोरोना के साथ-साथ कई रहस्यमयी परतों को खोलने का काम लेखक ने किया है। उपन्यास में पूर्वोत्तर राज्य की भौगोलिक स्थितियों के साथ-साथ वहाँ की जीवन शैली का बहुत ही यथार्थ एवं रोचक वर्णन मिलता है। उपन्यास में बहुत सारी घटनाओं और जानकारियों का विखराव है परंतु अन्त में सारी कड़ियों का सूत्र एक जगह आकर जुड़ जाता है। शायद इसके रहस्य को बनाये रखना ही लेखक की मंशा रही है या यूँ कह सकते हैं कि लेखक ने उपन्यास के क्षेत्र में नया प्रयोग किया है।

'ऑपरेशन कोरोना' कई नई जानकारियों को दर्शाता है। लेखक ने उपन्यास में स्लीप पैरेलैसिस के प्रकोप को वैज्ञानिक तरीके से समझाने का पयास किया है। इस बीमारी के प्रभाव में आने से व्यक्ति सोते समय कुछ गतिविधियाँ करता है। जैसे सोते समय उठकर इधर-उधर घूमना तथा कुछ कार्यों को सोते समय अंजाम दे देना। एक डॉक्टर के द्वारा लेखक ने इसके लक्षण को बतलाया है तथा इसके ठीक होने क उपाय भी बताए हैं। लेखक ने डॉक्टर के माध्यम से मतिभ्रम या डिलीरियम का भी तार्किक वर्णन प्रस्तुत किया है। इसमें सोते जागते चलती फिरती परछाइयाँ या हिलती जमीन या हिलती दिवारें महसूस होती हैं। यहाँ तक कि वे परछाइयों को वास्तविक समझ कर उनसे बातें करने लगते हैं। उपन्यास में ल्यूसिड ड्रीमिंग के विषय में भी प्रकाश डाला गया है। इसमें बताया गया है कि व्यक्ति इसका अभ्यास करके मन चाहे सपने देख सकता है। यहाँ तक कि व्यक्ति रूहानी ताकतों को भी स्वप्न में बुला सकता है और उनसे बातें कर सकता है। यह सब सभ्यास के द्वारा संभव हो सकता है। इन तथ्यों की जानकारी मेडिकल साइंस पर आधारित हैं।

कैप्टन आनन्द पूर्वोत्तर की आतंकी गतिविधियों को रोकने के लिए शिलांग जाता हैं। आतंकी गतिविधियों को समझने के साथ-साथ उनका सामना उस क्षेत्र में घटित हवेली और डाक बंगले की रूहानी ताकतों से होता है। ये रूहानी घटनाएं उपन्यास की पठनीयता को चरम पर ला देती है। हवेलियाँ और डाक बंगले की दासतान में न जाने कितनी करुण सिसकियाँ दबी पड़ी हैं जो उपन्यास में जीवंत रूप में अभिव्यक्त हुआ है। ताइचू के मरने की घटना और उसकी रूह की कहानी एवं उसके कातिलों तक पहुँचना किसी जासूसी घटना से कम नहीं है। ताइचू की मृत्यु से जुड़े लोगों तक पहुँचने से पहले ही सिलसिलेवार तरीके से कातिलों की मृत्यु निश्चय ही उपन्यास के रोमांच को बढ़ा देती है। ताईचू का हत्यारा अब्दुल पर उपन्यास पढ़ते समय किसी भी पाठक को जरा सा भी शक नहीं होता। ताईचू के हत्यारे की मृत्यु के बाद ही कथानक का चरम दृष्टिगत होता है। पाठक उपन्यास का अंत यहीं समझने लगता है परंतु यह घटना अंत से जुड़कर और आकर्षक हो जाती है। वैसे उपन्यास का अंत बहुत ही मार्मिक और देश की समस्याओं से जुड़ा है और लेखक ने बहुत सटीक तरीके से देश प्रेम के साथ मानवता का संदेश प्रेषित किया है।

उपन्यास में एक आयाम सपना का भी है। सपना शिलांग में एस.एम. गर्ल्स कालेज के लेक्चरर पद पर ज्वाइन करने जा रही थी। कैप्टन आनंद की मुलाकात ट्रेन में सपना से होती है। वहीं से इनकी जान पहचान हो जाती है। कालेज की प्रिन्सिपल कौसल्या देवी थी। यह कालेज इनके दादा जी ने बनवाया था। कौशल्या देवी का परिवार जमींदार था। उनकी हवेली में ही सपना को ठहरने का अवसर मिल गया। सपना का पूजा घर के सामने रात को रूहानी परछाइयाँ दिखाई देती थी। इसका जिक्र उन्होंने कैप्टन आनंद से किया। पूजा घर के पीछे के दूसरे दरवाजे का रहस्य सपना की समझ में नहीं आता था। एक दिन कौशल्या देवी ने पूजा करने के लिए दरवाजा खोला और सपना पूजा में उनकी मदद करने के लिए उनके साथ थी। अचानक लाइट कटने पर सपना उसी पूजा घर में बंद हो गई तब जाकर उसको वहाँ का रहस्य और कौशल्या की चाल का पता चला। कई लड़कियों को वहाँ इसी तरह से बंद कर दिया गया था और

वहाँ उनकी जीवन लीला समाप्त हो गई। कैप्टन आनंद ने सपना की जान बचाई। उपन्यास में यह रहस्य भी उसकी रोचकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अरूण कुमार सिन्हा जी 'ऑपरेशन कोरोना' के माध्यम से पूर्वोत्तर की आतंकवादी गतिविधियों के सूत्र निर्मित किए है। वहाँ का आतंक, विदेशियों द्वारा वहाँ की जमीन में लीथियम या सफेद सोना प्राप्त करने के रहस्य से जुड़ा है। प्राकृतिक आपदाओं पर नियंत्रण रखते हुए या वहाँ की आपदाओं की जानकारी रखकर उसकी पहले से सूचना देकर वहाँ के निवासियों का भगाकर अंडरवर्ड के आतंकी लीथियम पर कब्जा करना चाहते थे। प्राकृतिक आपदाओं का डर दिखाकर या वहाँ के लोगों का मार-पीट कर, डराकर वहाँ से भगाना चाहते थे जिससे वे वहाँ की खनिज सम्पदा पर नियंत्रण कर सकें। इसक लिए वे बोमारियों का वायरस छोड़कर लोगों में दहशत पैदा करना चाहते थे। कैप्टन आनंद ने उनकी गतिविधियों को समझकर वहाँ के लागों और देश की जमीन को बचाने का प्रयास किया है। उपन्यास में आर्टीफिशियल इंटेलिजेंस पर व्यापक प्रकाश डाला है और इसके द्वारा फॉदर मैथ्यूज और फॉदर जोशुआ को पकड़ने में सफलता पाई है। उपन्यास में लेखक वायरस और विषाणु के प्रयोग क ऐतिहासिक साक्ष्य भी प्रस्तुत किये है। मौर्य काल में महाराजा नंद के अमात्य 'राक्षस' ने विषकन्या भेजकर सम्राट चंद्रगुप्त की हत्या करने का प्रयास किया था जिसे चाणक्य ने विफल कर दिया। लेखक पाकुड़ स्टेट की सत्य घटना का भी वर्णन किया है। वहाँ के राजा अमरेंद्र की युसिनिया पेक्टिस वायरस या विषाणु के इंजेक्शन लगाने से इनकी मौत हो गई थी।

उपन्यास के अंत में फॉदर मैथ्यूज अंडरवर्ड का कुख्यात सरगना विल्फ्रेड लजारे बन जाता है और लजारे कहता है कि मैं इस खेल का मामूली व्यक्ति हूँ। मैं तो आर्डर फालो करता हूँ और उसके बदले मेरे खाते में पैसे आ जाते हैं। इसका सरगना कौन है मुझे पता नहीं। उसी दौरान इनको टीवी पर एक भूरे रंग की बिल्ली की तस्वीर दिखाई दी जिसके गले में चेन से रिमोड टंगा था। बिल्ली के रिमाड स्क्रीन पर खरोचने से बडे रोबोट से आवाज आ रही थी जो कि इस उपन्यास का महत्वपूर्ण संदेश है- ''तुम इंसान अपने को बुद्धिमान और ताकतवर समझते हो लेकिन तुम लोग बिल्कुल मूर्ख हो जो अपने स्वार्थ के कारण किसी बात की परवाह नहीं करते। लेकिन यह मत भूलो कि जिन्हें तुम जानवर कहते हो इस सृष्टि में तुम लोगों से हजारों साल पहले हम आए हैं। पहले हम लोग जंगलों में साथ-साथ रहते थे एक परिवार की तरह। धीरे-धीरे तुम लोगों ने अपनी बुद्धि का उपयोग कर गाँव, शहर तथा महानगर बना लिए।'' यह संदेश मनुष्य के आदिम संस्कार की याद दिलाता है। उपन्यास के उपसंहार में बिल्ली के इंतकाम का बहुत ही अनूठा चित्रण प्रस्तुत हुआ है। इसके साथ-साथ पटना के गोलघर और म्यूजियम का लेखक ने बेहतरीन चित्र प्रस्तुत किया है जो पढ़ते समय लाइव देखने जैसा प्रतीत होता है।

उपन्यास में घटनाओं के चित्रण में परिवेश का वर्णन बहुत अनूठा हुआ है। पूर्वोत्तर के नामों का वर्णन जैसे ताईचू, चानू, चांगलू, प्रधान थापा, शीलू तथा दानियाल कथानक के परिवेश को जीवंत बना देते हैं। उपन्यास में पर्वतीय क्षेत्र का वर्णन तथा वहाँ के मौसम भी कथानक को आगे बढ़ने में मदद करते हैं। हवेलियों की जीवन शैली, उनके खानपान के अलग-अलग रूप वहाँ के परिवेश को जीवित कर देते हैं। उपन्यास को पढ़ते समय ऐसे लगता है जैसे हम वहाँ की वादियों में घूम रहे हैं। फॉदर मैथ्यूज के अस्पताल का वर्णन, अहमद की जीवन शैली आदि का चित्रण बिल्कुल कथानक के अनुरूप हैं। लेखक ने अविभाजित आसाम का भी वर्णन किया है। गौहाटी आसाम का सबसे बड़ा शहर था, बाद में इसी से अलग होकर अलग-अलग राज्य बने। इस तरह से कई ऐतिहासिक घटनाओं का जिक्र हुआ है जो उपन्यास के फलक को विस्तृत बना देता हैं।

उपन्यास में लेखक ने कोरोना पर भी विस्तृत जानकारी दी है। इसके पहले की पृष्ठ भूमि तथा चीन के वुहान शहर की प्रयागशाला में बनने वाले वायरस एवं बैक्टीरिया का भी विस्तार से वर्णन देखने को मिलता है। कोरोना फैलने का इतिहास तथा उसके अलग-अलग रूप तथा कोरोना से पूरे विश्व की दशा तथा इससे प्रभावित तथा मृत व्यक्तियों का डाटा भी लेखक ने उपन्यास में दिया है। लॉग कोविड का प्रभाव एवं लक्षण तथा उसके प्रभाव से बचने में प्रयोग की जाने वाली सामान्य दवाइयों का भी जिक्र किया गया है। आई.सी.एम.आर. ने भी अपनी रिपोर्ट में कोरोना से संक्रमित व्यक्तियों के लिए दो साल तक हेवी इक्सरसाइज न करने की सलाह दी है क्योंकि उनमे हार्टअटैक के केस ज्यादा देखे जा रहे हैं। उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण विन्दु कोरोना को अण्डरवर्ड से जोड़कर देखना है जो प्राकृतिक आपदाओं से लोगों को डराने-धमकाने का कार्य अपने स्वार्थ सिद्धि में करते हैं। उपन्यास में कोरोना के साथ-साथ स्लीपिंग डिसऑर्डर, ल्युसिड स्लीपिंग, निद्रापक्षाघात, वाईपॉवर डिसआर्डर आदि बीमारियों के लक्षण तथा उसके निदान के लिए सावधानियों के वैज्ञानिक आधार का उल्लेख उपन्यास में किया गया है।

निष्कर्षत: उपन्यास का कथा विन्यास चार दृष्टिकोण के साथ आगे बढ़ता है। प्रथम कोरोना की जानकारी देना। जिसमें लेखक उसकी उत्पत्ति, उसके लक्षण-सावधानियाँ, प्रभावित लोगों का डाटा तथा कुछ देशों की कुत्सित विचारधारा को केन्द्र में रखा है। द्वितीय लेखक ताईचू की मृत्यु में शामिल गुनहगारों को सजा दिलाकर उसकी आत्मा का मुक्त करना। तीसरा सपना को काश्लया के चंगुल से मुक्त कराना तथा रूहानी शक्तियों के आधार का वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना। चौथा अंडरवर्ड द्वारा आतंक के विविध तरीके को जनता के सामने लाना तथा उनकी साजिशों का पर्दाफाश करना और मानव जाति को बुद्विरूपी तर्कजाल से मुक्त कर मानवता का संदेश देना। इन दृष्टिकोणों का सही चित्रण शिलांग की वादियों में ही हो सकता था। उपन्यास की भाषा-शैली तथा परिवेश का चित्रण बहुत सटीक तरीके से किया गया है। उपन्यास हर दृष्टिकोण से सफल उपन्यास है। निश्चित ही उपन्यास पाठकों का स्नेह प्राप्त करने में सफल होगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। एक अच्छी कृति के लिए लेखक को हार्दिक शुभकामनाएं।

संपर्क : बेलहरामऊ, राजाबाजार-जौनपुर (यू.पी.)222125
संप्रति-प्रवक्ता (हिन्दी) जवाहर नवोदय विद्यालय पदमी, मंडला (म.प्र.)-481661 -मो.9754128757

■

साल 2023 में पयोधि की आठ नयी पुस्तकें प्रकाशित

सुप्रसिद्ध साहित्यकार लक्ष्मीनारायण पयोधि की वर्ष 2023 में बाल साहित्य की कुल आठ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उल्लेखनीय है कि कवि,कथाकार,नाट्य लेखक और जनजातीय संस्कृति के अध्येता के रूप में विख्यात श्री पयोधि की विभिन्न विधाओं में अब तक कुल 56 किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। लखनऊ के प्रतिष्ठित प्रकाशन समूह राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर द्वारा 'पयोधि का बाल साहित्य' श्रृंखला में इस वर्ष 'कुक्कू के गीत', 'उत्तर बन जायें, 'सूरज के उगने से पहले', 'सबका राजदुलारा भारत' (बालगीत), 'सातवीं राजकुमारी' (कथाकाव्य) और 'मटकनी और मक्खन का गोला', 'अनुभव की सीख', 'दान का धन' (कहानियाँ) आदि प्रकाशित की गयी हैं। इनके पूर्व भी इस प्रकाशन समूह द्वारा बाल साहित्य सहित विभिन्न विधाओं में पयोधि की डेढ़ दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं, जिनमें 'अजब कहानी, गजब कहानी' (बाल कथाएँ,1996) और 'हर्षित है ब्रह्माण्ड' (गीत,2003)को क्रमश:

मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी और मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा श्रेष्ठ कृतियों के रूप में पुरस्कृत किया जा चुका है। गौरतलब है कि इसी प्रकाशन समूह द्वारा प्रकाशित काव्य नाटक 'गुण्डाधूर' के वर्ष 1987-88 में अनेक नाट्य-प्रदर्शनों के बाद ही क्रांति नायक गुण्डाधूर स्वतंत्रता सेनानी के रूप में चर्चित हुए।

उल्लेखनीय है कि मध्यप्रदेश शासन की प्रतिष्ठित मासिक बाल पत्रिका 'समझ झरोखा' के यशस्वी संपादक रहे श्री पयोधि की कविताएँ, कहानियाँ और जनजातीय संस्कृति संबंधी लेख आदि केन्द्रीय और मध्यप्रदेश राज्य की माध्यमिक कक्षाओं के भाषा पाठ्यक्रम में कई वर्षों से शामिल हैं। यह अत्यंत गौरव की बात है कि 'लक्ष्मीनारायण पयोधि के साहित्य में जनजातीय संवेदना' विषय पर डॉ.ज्योति कुशवाहा, बिलासपुर (छत्तीसगढ़) को तथा 'लक्ष्मीनारायण पयोधि की काव्यकृतियों- 'सोमारू' और 'लमझना' में निहित आदिवासी संस्कृति का वैभव और जीवन-संघर्ष' विषय पर श्रीमती जयाप्रभा भट्टाचार्य, चक्करगाँव (अंडमान) को पीएचडी की उपाधि मिल चुकी है। इनके साहित्य पर केन्द्रित आलोचना-ग्रंथों में 'बस्तर का काव्य-पुरुष सोमारू' (सं. राधेलाल बिजघावने,1997) 'पयोधि हो जाने का अर्थ' (डॉ.लता अग्रवाल,2013),'उत्तर सोमारू' (डॉ. लता अग्रवाल,2022) और 'लक्ष्मीनारायण पयोधि के साहित्य में जनजातीय संवेदना' (डॉ. ज्योति कुशवाहा, 2023) प्रमुख हैं।

रपट : कला समय

अश्विनी कुमार दुबे के उपन्यास 'हमारे हिस्से की छत' का लोकार्पण हुआ।

मध्यप्रदेश राजभाषा प्रचार समिति के तत्वावधान में अश्विनी कुमार दुबे के उपन्यास 'हमारे हिस्से की छत' का लोकार्पण संपन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता मानस भवन के कार्यकारी अध्यक्ष श्री रघुनंदन जी शर्मा, मुख्य अतिथि अक्षरा के संपादक मनोज कुमार श्रीवास्तव एवं विशिष्ट अतिथि के

रूप में श्री सुरेंद्र गोविंद गोस्वामी सुरेंद्र बिहार उपस्थित रहे। रघुनंदन शर्मा, अध्यक्ष ने कहा कि घर हर व्यक्ति की जरूरत है सिर्फ बंदर ऐसा प्राणी है जिस घर की जरूरत नहीं होती लेकिन हम मनुष्य हैं और हमें अपना घर बनाना चाहिए या हमें अपना घर हर हालत में मिलना चाहिए परिवार हमारा आदर्श माता-पिता देव तुम हो और बच्चे श्रवण कुमार इस प्रकार इस उपन्यास का दूसरा पक्षी बनता है जो आदर्श समाज के निर्माण की परिकल्पना को निरूपित करें। बौद्धिक चर्चा में भाग लेते हुए मनोज श्रीवास्तव ने उपन्यास की गंभीर मीमांसा की जिसमें उन्होंने बताया कि यह एक मध्वर्गीय परिवार की व्यथा कथा का वास्तविक चित्रण है। एक मध्यवर्गी परिवार के मुखिया के लिए एक मकान बनाना वास्तव में बहुत मुश्किल काम है और इस मुश्किल काम को पूरा करने में वह कितनी जद्दोजहद से गुजरता है इसका विस्तार से विवरण इस उपन्यास में है। सुरेश सुरेंद्र विहारी गोस्वामी ने विषय का एक अलग पक्ष निरूपित करते हुए बताया कि हमें हर परिवार में देवताओं की तरह मां-बाप को रखना चाहिए एवं श्रवण कुमार की तरह बच्चों को होना चाहिए। यदि हम इस परिकल्पना को लेकर आगे चलेंगे तो हम एक स्वस्थ और सुंदर समाज का निर्माण कर सकते हैं। इस कार्यक्रम में दादा कैलाश चन्द्र पंत जी की विशेष उपस्थिति रही। सर्वप्रथम कार्यक्रम में पधारे अतिथियों का स्वागत सुरेश पटवा ने किया। अश्विनी कुमार दुबे ने अपने आधार वक्तम में अपनी रचना यात्रा एवं उपन्यास की कथावस्तु पर विस्तार से प्रकाश डाला। कार्यक्रम का सरस संचालन चंद्रभान राही ने किया। कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात गोकुल सोनी जी ने आभार व्यक्त किया।

रपट:गोकुल सोनी

आयोजन

प्रो. राजाराम की स्मृति में एक दिवसीय कला शिविर एवं शिविरांकित प्रदर्शनी सम्पन्न

वगत दो वर्षों से प्रो. राजाराम के जन्म दिवस के उपलक्ष में 'सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन-शोध पीठ भोपाल' द्वारा आयोजित एक दिवसीय कला- शिविर इस वर्ष दिनांक 18 फरवरी, 2024 को सफलाता पूर्वक संपन्न हुआ। शिविर में चित्रांकन का विषय 'राम-कथा' था। शिविर में सहभागिता करने वाले वरिष्ठ एवं कनिष्ठ सभी कलाकारों ने अपनी-अपनी निजी शैलिओं में रामकथा केन्द्रित मनमोहक कलाकृतियों का निर्माण कर शिविर-आयोजन को सार्थक किया। शिविरांकित चित्रों की प्रदर्शनी का उद्घाटन तथा सम्मान समारोह का आयोजन दिनांक 22 फरवरी, 2024 को सायं 4 बजे सप्तवर्णी परिसर में सफलता पूर्वक संपन्न हुआ, जिसमें मुख्य अतिथि थे पद्मश्री श्रीयुत विजयदत्त श्रीधर जी तथा अध्यक्ष के रूप में उपस्थित रहे प्रतिष्ठित पत्रकार माननीय श्री राजेंद्र शर्मा जी। इस अवसर पर शिविर के उद्घाटन कर्ता वरिष्ठ कलाकार श्री देवीलाल पाटीदार तथा डॉ. सुषमा श्रीवास्तव की विशेष उपस्थिति उल्लेखनीय रही शिविर में निर्मित श्रेष्ठ चयनित कृति के कृतिकार के रूप में डॉ. सुचिता राउत को श्रेष्ठ कलावंत पुरस्कार के रूप में रु.6000/- की सम्मान राशी तथा श्रेष्ठ सर्जक के रूप में सम्मानित हुए सुश्री उपासना सारंग, श्री प्रभु ढोक और सुश्री संचिता डाले। पुरस्कारों सहित समस्त प्रतिभागियों को सम्मान- पत्र, स्मृति-चिह्न सह यथोचित भेंट के साथ सम्मानित किया गया।इस अवसर पर अपने गुरु प्रो. राजाराम की कला एवं कला शिक्षकीय व्यक्तित्व पर वरिष्ठ कलाकार शिक्षक सुश्री नीता विश्वकर्मा का आलेख तथा स्वयं के विचार भी डॉ. सुचिता राउत ने सबके सम्मुख रखे। मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित मान, श्रीधर जी ने अपने वक्तव्य में सप्तवर्णी संस्था एवं कला-दीर्घा की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हुए इसकी सफलता से लिए शुभ कामनाएँ दी तथा आपने कहा मान. राजेंद्र जी ने आत्मीयता से ओतप्रोत अपने वक्तव्य में प्रो. राजाराम से जुड़े अनेक संस्मरणों को साझा किया। उन्होंने बताया कार्यक्रम का प्रारंभ दीप प्रज्जवन-सरस्वती वंदन के साथ हुआ। अतिथियों का स्वागत किया, संस्था की निदेशक एवं शिविर संयोजक डॉ. बिनय षडंगी राजाराम ने। अतिथियों का परिचय प्रस्तुत किया संस्था से आत्मीयता से जुडी डॉ. ज्योत्सना गलगले। संस्था के कार्यों के विषय में संक्षेप में बताते हुए औपचरिक धन्यवाद ज्ञापित किया प्रोफेसर स्निग्धा दत्ता ने । समस्त कार्यक्रम का सफल सचालन किया डॉ. आभा मिश्रा तथा डॉ. स्मृति उपाध्याय ने।इस महत्वपूर्ण आयोजन में शिविर में सहभागी कलाकारों सह डॉ. देवेन्द्र दीपक, श्री संतोष शुक्ल, श्री विनय सप्रे, श्री आशीष श्रीवास्तव, श्री भँवरलाल श्रीवास, डॉ. सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट रसरंग, डॉ. नारायण व्यास, डॉ. शकुन्तला जैन, डॉ. चरणजीत कौर जैसे अनेक अनेक कला प्रेमी एवं संस्कृति कर्मियों की गरिमामय उपस्थिति ने कार्यक्रम को सार्थकता प्रदान की।कार्यक्रम का समापन सामूहिक वन्दे मातरम गान से हुआ।

डॉ. बिनय षडंगी राजाराम,
निदेशक, सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजनपीठ-शोध पीठ भोपाल

संदीप राशिनकर के चित्रों से सज्जित है नोबेल विजेता कैलाश सत्यार्थी की कृति सपनों की रोशनी

इंदौर । नोबेल विजेता श्री कैलाश सत्यार्थी जी द्वारा लिखी गई डायरियों के परिप्रेक्ष में एक प्रेरणास्पद पुस्तक हाल ही में सम्पन्न दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में आई है। 'सपनों की रोशनी' शीर्षक से प्रकाशित इस वैश्विक महत्व की कृति को दिल्ली के प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है। यह पुस्तक श्री कैलाश सत्यार्थीजी द्वारा मात्र सत्रह वर्ष की उम्र में डायरी में लिखे सफलता के नौ सूत्रों पर आधारित है। उल्लेखनीय है कि सत्यार्थीजी की यह तीसरी कृति है जिसकी चित्राभिव्यक्ति के लिए इंदौर के चित्रकार संदीप राशिनकर का चयन किया गया था । संदीप ने इस कृति में निहित नौ प्रसंगो को अपनी अभिनव शैली में चित्रित अठारह चित्रों में चित्रबद्ध कर प्रसंगो को रुचिकर और प्रभावी बनाया है। संदीप के बनाये चित्रों ने न सिर्फ इस कृति की रोचकता में वृद्धि की है वरन इसे और लक्षवेधी बनाया है। अनेक कृतियों के लिए बनाए अपने हजारों रेखांकनों से संदीप ने न सिर्फ राष्ट्रव्यापी ख्याति अर्जित की है वरन ज्ञान्तव्य है कि श्री सत्यार्थीजी की कोरोना पर लिखी चर्चित कृति कोविड-19 सभ्यता का संकट और समाधान और कैलाश सत्यार्थी के जीवन के प्रेरक प्रसंग में भी संदीप राशिनकर के चित्रों का समावेश किया गया था। उल्लेखनीय है कि भारत रत्न सत्यजित रॉय की एक कृति में भी आवरण के साथ संदीप ने आंतरिक चित्रण किया था।

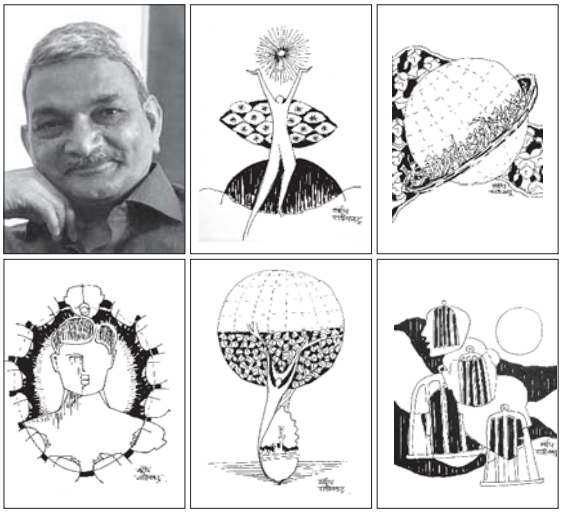

रपट: संदीप राशिनकर

आयोजन

तबला 'चिल्ला' समारोह सम्पन्न

मेरी अस्सी वर्ष की आयु तक मुझे एक भी चिल्ला पर्ण करने वाले कलाकार का दर्शन नहीं हुआ: पं. किरण देशपाण्डे

कहते हैं कि गुरु गोविंद से भी बडा होता है क्यों कि वही शिष्य को गोविंद के 'बडप्पन' से परिचित करवाता है. पर सारे गुरु एक बात पर सहमत होते हैं कि उन से भी कोई बडी चीज है वह है नियमित अभ्यास या रियाज़.बीसवी शति मे कलाकारों मे श्रेष्ठता परखने हेतु अनौपचारिक स्पर्धाएं होती थी. घरेलू बैठकों के माध्यम से वह आयोजित होती थी. एक के बाद एक कलाकार बडी तैय्यारी के साथ अपनी कला की वानगी देते थे. सब कलाकार एक दूसरे के कार्यक्रम सुनते थे, बड़े बुजुर्ग कलाकार भी इन में होते थे. मुख्य स्पर्धा तो युवा कलाकारों मे ही होती थी और सभा के अंत में उपस्थित कलाकार और श्रोताओं के अनौपचारिक आकलन के आधार पर अघोषित रूप में किसी एक को विजेता माना जाता था. इस में कभी कभार मतभेद भी 'तू-तू, मै-मै' के स्तर तक पहुंच जाते थे पर अंततोगत्वा अगली बैठक पुनरागमनाय के लिये सभा विसर्जित हो जाती थी.तरुण कलाकारों मे अगली बैठक के लिए तैय्यारी के लिए एक खास तरह की अभ्यास प्रक्रिया अपनायी जाती थी जिसे 'चिल्ला' कहते थे. अब इस शब्द की उत्पत्ति 'चिल्लाने' से हुई या इसकी अवधि चालीस दिन की होती थी इस कारण हुई, यह कहा नही जा सकता. गायक, तंत्रकार, तबला, मृदंग वादक या नर्तकों के लिये चिल्ला करने मेंप्रतिबंध नही था. कितने कलाकार यह चिल्ला सफलतापूर्वक पूरा करते थे इस का कोई रेकॉर्ड नही मिलता. पर इसे सफलतापूर्वक पूर्ण करने पर कला में निखार अवश्य आता होगा यह निश्चित.इन चालीस दिनों में कलाकार स्वयं को समाज ही क्या, परिवार की भी दैनिक गतिविधियों से अलग कर लेता था. इन चालीस दिनों मे वह एक कमरें मे खुद को बंद कर लेता था और रियाज हि उसका इस बंदिस्त जीवन का सहयात्री होता था. इस संकल्प में घर के सभी सदस्य पूरे मनोयोग से उस कलाकार का सहयोग करते थे. मेरे दुर्भाग्य से मेरी अष्टदशकीय आयु तक मुझे एक भी चिल्ला पूर्ण करनेवाले कलाकार का दर्शन नही हुआ.विगत लगभग दस साल से नासिक (महाराष्ट्र) में,आदिताल तबला अकादमी, अल्पारंभ कला संस्कृति और शिक्षा प्रतिष्ठान के उदार आर्थिक सहयोग से 'चिल्ला' शीर्षक के अंतर्गत तबले का त्रिदिवसीय सम्मेलन आयोजित करती आ रही है. कालजयी मराठी कवि कुसुमाग्रज(वि.वा. शिरवाडकर) स्मृति सभागार मे भारत के बुजुर्ग तबलावादक, प्रथितयश व्यावसायिक तरुण तबलावादक एवं अन्य उत्साही तबलावादक इस में शिरकत करते हैं। नासिक के ऋषितुल्य तबलावादक श्री. कमलाकर वारे जी सहित तीन पीढ़ियाँ इस मे अनवरत कार्यरत हैं। अल्पारंभ फ़ाऊंडेशन के संगीतप्रेमी युगुल श्री. रघुवीर अधिकारी और सौ. मनीषा अधिकारी इस उत्सव के आधार हैं. नब्बे वर्षीय श्री. सुरेश मुलगांवकर जी से ले कर बाल कलाकारों तक सब सहर्ष यहाँ हाज़िरी लगाते है. कोई भी पारिश्रमिक नही दिया जाता है चाहे वह कोई भी 'तिस्मारखाँ' क्यों न हो। सर्वसाधारणत: किसी कलाकार की पुनरावृत्ति को टाला जाता है। मैंने प्रतिवर्ष इस कार्यक्रम में हिस्सेदारी करने का मन बना लिया है, और यह मेरा चौथा वर्ष था। इसमें एक वर्ष मैंने स्वतंत्र तबलावादन करने का साहस जुटाया था। उस्ताद अहमदजान थिरकवाँ साहब के योगदान के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते इस उत्सव का प्रारंभ होता है।इस वर्ष 23-24-25 फ़रवरी को संपन्न इस चिल्ला समारोह में चार सत्रों में चौदह तबलावादकों ने वादन किया। एक सत्र मे चार वरिष्ठ (आयु के) तबलावादकों ने अपने गुरुओं के साथ बिताए समय का कृतज्ञतापूर्वक उल्लेख करते हुए उन की शिक्षा देने का भी विवरण दिया जो बडा ही मनोरंजक था। पं. सुधाकर पैठणकर(शिष्य स्व. पं. नारायण जोशी), पं. ओंकार गुलवाडी(शिष्य स्व. पं. तारानाथ), पं. किशन रामडोहकर(शिष्य स्व. पं रामजी मिश्र) और मैं (शागिर्द, मरहूम उस्ताद शेख़ दाऊदखाँ) इस मे शामिल थे। सूत्रसंचालक श्री नितिन वारे थे जो स्वयं एक निपुण तबलावादक है। निर्विवाद रूप से सभी कलाकारों नें अपनी सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुति दी परंतु व्यक्तिगत रूप में मुझे श्री यशवंत वैष्णव के तबले के साथ श्री नवीन शर्मा के ढोलक की जुगलबंदी एक उच्च स्तरीय परंतु आकर्षक प्रयोग लगा। बेंगलुरु के वरिष्ठ तबलावादक श्री. रविंद्र यावगलजी ने पेशकार, कायदे, रेलों को पाँचो जाति (तिस्त्र, चतस्त्र, खंड, मिश्र और संकीर्ण) मे बजा कर एक सृजन का नया मार्ग प्रकाशित किया. युवा तबलावादक श्री ओजस आढिया का तबलावादन तैय्यारी, मिठास और नवता का आकर्षक मिश्रण था जो मेरे लिये अविस्मरणीय रहेगा। उनकी सादगी और नम्रतापूर्ण व्यवहार ने सब का दिल जीत लिया।मै निर्विवाद रूप से चिरयुवा उस्ताद जाकिरहुसैन को इस युग का सर्वाकर्षक तबलावादक मानता हूँ। नई पीढ़ी के वो आदर्श हैं और मेरा मानना है कि बहुतांश तबलावादक कहीं ना कहीं उन के जैसा बजा कर वाहवाही लूटते हैं. जाकिर घराना सब के सिर चढ कर बोल रहा है. पर इस चिल्ला समारोह मे मेरी यह धारणा गलत साबित हुई इस का मुझे आनंद है. सभी तबलावादक कों ने अपने अपने गुरु का सबक, अपने सघन अभ्यास का जोड दे कर अत्युच्च स्तर पर प्रस्तुत किया.यदि अच्छा रास्ता न हो तो फ़ॉर्च्यूनर कार का भी मिसफॉर्च्यून होने मे देर नही लगती। यदि अच्छा लहरा न मिले तो तबले की सारी गुणवत्ता मिट्टी मोल हो जाती है। श्री महाबळ, श्री सोनवणे और उडपि से पधारे श्री भट ने सारा लयमार्ग व्यवस्थित किया थ जिस के लियेधन्यवाद शब्द निक्त लगता है। आज कल बिना उचित ध्वनिविस्तारण व्यवस्था कोई भी कार्यक्रम आखरी श्रोतातक पहुंचता नहीं। बॉये (डग्गे) की लोच उस के बिना आनंदविहीन हो जाती है। यहाँ यह व्यवस्था निस्संदेह उत्कृष्ट थी और अधिकारी दांपत्य के आतिथ्य का क्या कहने। उन के स्नेहिल आतिथ्य ओर श्री मनोहरजी की प्रति सत्र नई भोजनसृजनता का उपभोग लेने के लिये मै बिना चिल्ला भी नासिक यात्रा करने मै तैय्यार हूँ। जनगणमन अथवा पारंपरिक भैरवी की जगह पैगंबरवासी उस्ताद थिरकवाँ खाँसाहब की ध्वनिमुद्रिकावादन से यह बहुप्रतिक्षित तबला चिल्ला संपन्न हुआ।

रपट: ऋचा दुबे

■

वर्ष 2023 का कला समय शब्द-शिखर सम्मान से प्रो. रमेश दवे को सम्मानित किया गया

प्रख्यात साहित्यकार और शिक्षाविद,-प्रो. रमेश दवे को वर्ष 2023 का कला समय शब्द-शिखर सम्मान से सम्मानित किया गया। पिछले दिनों कला समय संस्था का प्रतिष्ठापूर्ण आयोजन संस्कृति पर्व -6 पारंपरिक जनजातीय कलाओं में समय के साक्ष्य विषय पर केन्द्रित उत्सव राज्य संग्रहालय सभागार श्यामला हिल्स, भोपाल में संपन्न हुआ इस आयोजन में प्रो. रमेश दवे का स्वास्थ्य खराब होने से वे समारोह में उपस्थित नहीं हो सके इसलिए कला समय संस्था के सचिव भँवरलाल श्रीवास ने उनके निवास स्थान पर जाकर उनके पुत्र एवं पौत्र की उपस्थिति में 'कला समय शब्द शिखर सम्मान' से सम्मानित किया।

रपट: कला समय

पुराणिक संगीत संस्थान में सरस्वती पूजन संपन्न

पुराणिक संगीत संस्थान में सरस्वती पूजन संपन्न आदर्श नगर भोपाल के। गुरु डॉक्टर पंडित बलवंत पुराणिक एवम उनके शिष्यों ने का पर्व दिनाक 18 फरवरी 2024 को मनाया। इसमें प्रो, सज्जनलाल जी ब्रम्ह भट्ट,श्रीमती कुम कुम सिंह शायरा, श्री राजेश भट जी, सौ, सुलेखा भट जी, आर, के, क्रिएशन के डायरेक्टर श्री आर के शर्माजी ,कला समय के संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास जी श्री श्रीकृष्ण फड़के जी, श्री प्रदीप कोगनुलकर जी, आदि अनेक गण मान्य व्यक्तियों की गरिमांमय उपस्थिति में कार्यक्रम संपन्न हुआ। प्रमुख कार्यक्रम प्रसन्न राव जी का था। प्रसन्न राव ने एक से बढ़ कर एक गाना सुना कर श्रोताओं का मन जीत लिया। आनंद मय वातावरण में कार्यक्रम संपन्न हुआ।

रपट: कला समय

कला समय

26 वर्षों के महत्वपूर्ण विशेषांक...

सांस्कृतिक धड़कनों का जीवंत दस्तावेज

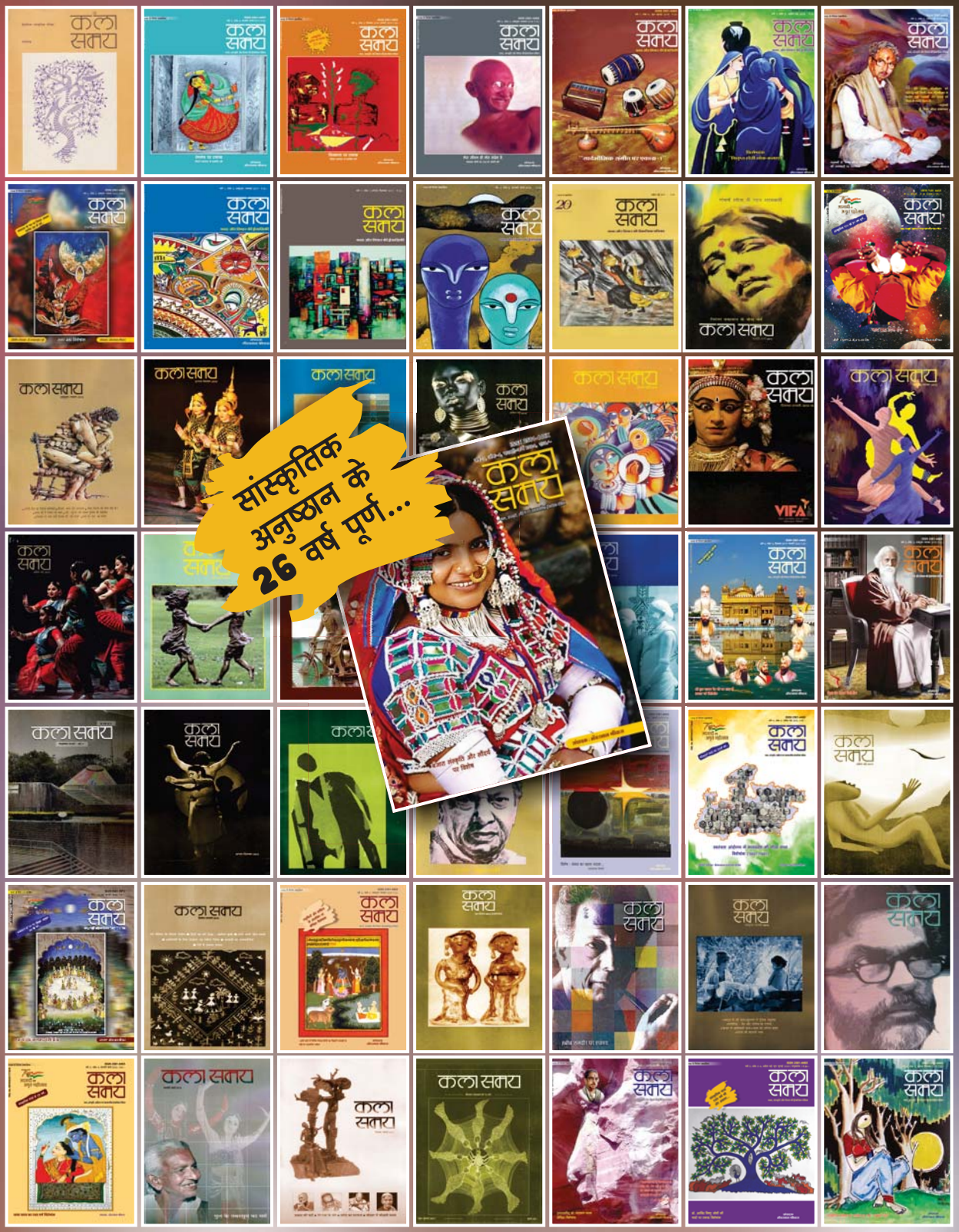

सभी विशेषांक कला समय की वेबसाईट www.kalasamaymagazine.com पर देखे व पढ़े जा सकते है।

सांस्कृतिक यात्रा का 27 वाँ वर्ष...

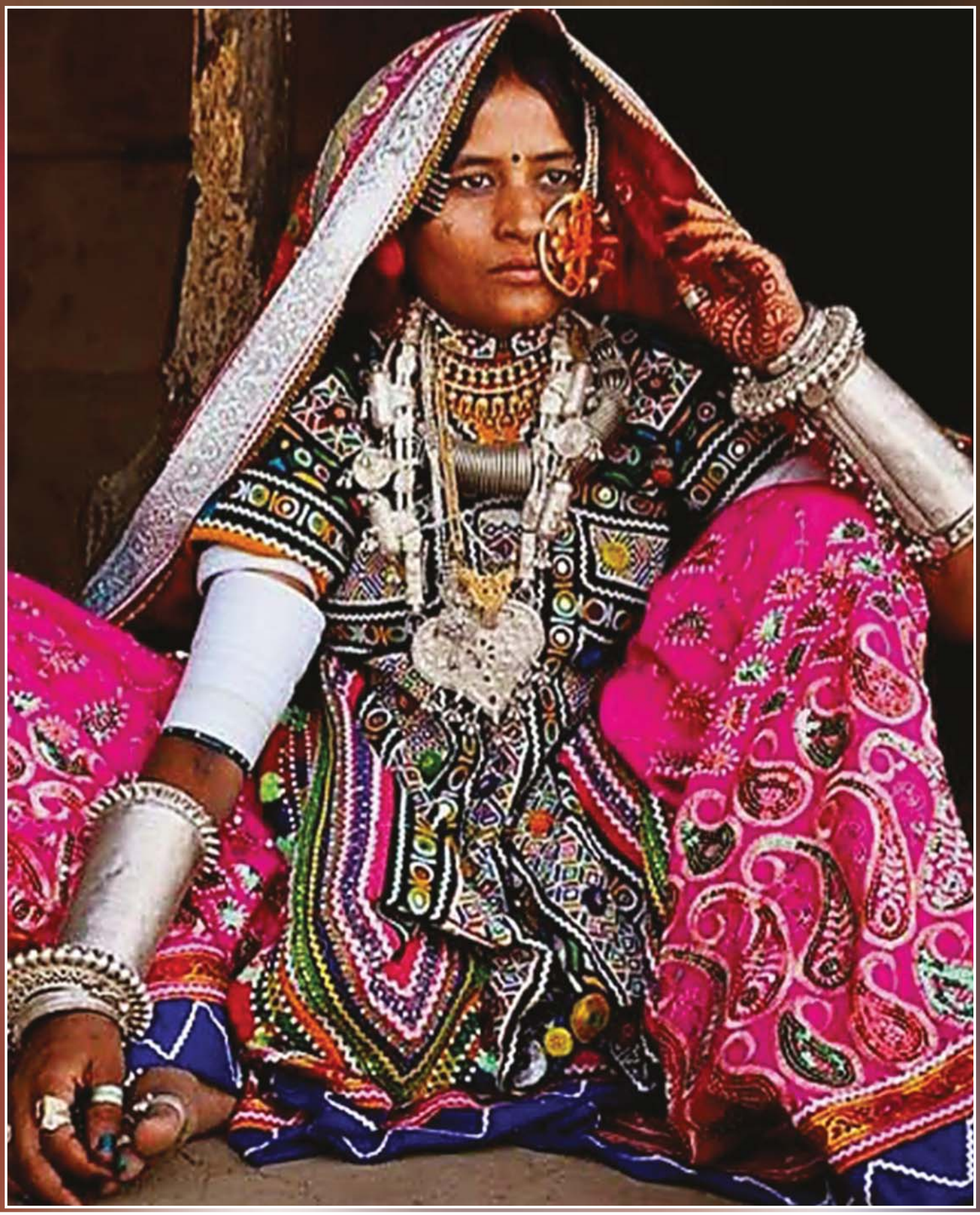

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन–1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे–191, मंगल भवन, ई–6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)– 462016 से प्रकाशित। संपादक – भँवरलाल श्रीवास